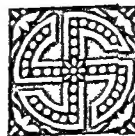
नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥



// श्री महावीराय नमः //

// जय नानेश //

// जय रामेश //

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 9

संकलनकर्ता
मदनलाल कटारिया

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -9

संस्करण - प्रथम संस्करण, वर्ष 2008

प्रतियाँ - 2100

मूल्य - रुपये

अर्थ सौजन्य : शासननिष्ठ दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री विमलचन्दजी सोहनलालजी सिपाणी परिवा

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.) फोन-0151-2544867, 3292177

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार
समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम-457001 (म.प्र.) फोन-07412-244443

Sampat Nursing Home
4, Nachiappa Street, Mylapore, CHENNAI-600004 ☎ : 4980572, 498002, 4980578

श्री सोहनलालजी विमलचंदजी सिपाणी
831, 13th मेन II ब्लॉक, कोरमंगला, बैंगलोर
☎ 25537878 (नि.), 25537833 (ऑ.)

श्री जवाहर मित्र मण्डल
उन बजार, ब्यावर जिला अजमेर (राज.)

श्री सायरचन्दजी छल्लाणी
पारसमनी, 4 वेस्ट प्रतापनगर, मेन पटेल नगर, न्यू देहली
☎ 0124 - 5052629, 011 - 25883344

श्री पृथ्वीराज जी पारख
पारख ट्रेडर्स, आपापुरी, कचहरी रोड पो. दुर्ग - 491001
फोन : (0788) 2324255 (नि.) 2324554 (ऑ)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर - 334005 (राज.)
फोन : (0151) 2544867, 3292177

मुद्रक
छाजेड़ प्रिन्टरी प्रा. लि., 108, स्टेशन रोड, रतलाम (म. प्र.)
फोन : (07412) 230557

भूमिका....

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षा निरन्तर चल रही है। जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म.सा. से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमें भाग 1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन कर जीवन में कुछ पा सकेंगे ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान प्रदान करें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम - भाग 1 से 12 तक

2 योग्यता - ज्ञानार्जन का अभिलाषी

3. परीक्षा का समय - माह आसोज, विदी पक्ष

4. श्रेणी निर्धारण

विशेष योग्यता	-	75% से 100%
प्रथम श्रेणी	-	60% से 74%
द्वितीय श्रेणी	-	46% से 59%
तृतीय श्रेणी	-	35% से 45%

5. परीक्षा फल - परीक्षा फल का प्रकाशन पत्रिका श्रमणोपासक में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।

6. प्रमाण-पत्र - सम्बेन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवायें जाएंगे।

7. पारितोषिक - प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार।

अनुक्रम

उत्तराध्ययन सूत्र

असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति ॥1॥

-**जीविय** - यह जीवन, **असंखयं** - संस्कार रहित है अर्थात् एक बार टूटने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता अतएव, **मा पमायए** - प्रमाद मत करो, **जरोवणीयस्स** - वृद्धावस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की, **ताणं** - रक्षा करने वाला, **हु** - निश्चय ही, **णत्थि** - कोई नहीं है, **एवं** - इस प्रकार, **वियाणाहि** - समझो कि, **विहिंसा** - हिंसा करने वाले और, **अजया** - पापस्थान से निवृत्त न होने वाले, **पमत्ते** - प्रमादी, **जणे** - पुरुष अन्त समय में, **किण्णु** - किस की, **गहिंति** - शरण में जावेंगे ॥1॥

जे पावकम्मेहिं धणं मणुस्सा, समाययंति अमइं गहाय।
पहाय ते पास पयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति ॥2॥

-कुबुद्धि एवं अज्ञान के वश होकर, **जे** - जो, **मणुस्सा** - मनुष्य, **पावकम्मेहिं** - पाप कर्मों से, **धणं** - धन को, **अमईं-अमयं** - अमृत के समान समझ कर, **गहाय** - ग्रहण कर के, **समाययंति** - संचय करते हैं, **पास पयट्टिए** - स्त्री-पुत्र आदि के पाश में फँसे हुए और, **वेराणुबद्धा** - वैर-भाव की श्रृंखला में जकड़े हुए, **ते** - वे, **णरे** - मनुष्य अन्त समय में धन को यहीं, **पहाय** - छोड़ कर, **णरयं** - नरक को, **उवेंति** - प्राप्त करते हैं। उस समय वह धन उनको शरणरूप नहीं होता ॥2॥

तेणे जहाँ संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि ॥3॥

- **जहाँ** - जिस प्रकार, **संधिमुहे** - संधिमुख पर सेंध लगाते हुए, **गहिए** - पकड़ा हुआ, **पावकारी** - पापात्मा, **तेणे** - चोर, **सकम्मुणा** - अपने ही किये हुए कर्मों से, **किच्चइ** - दुःख पाता है, **एवं** - उसी प्रकार, **पया** - जीव, **इहलोए** - इस लोक, **च**-

और, **पेच्च** - परलोक में अपने किये हुए अशुभ कर्मों से दुःख पाते हैं, क्योंकि फल भोगे बिना, **कडाण** - किये हुए, **कम्माण** - कर्मों से, **मुक्ख** -छुटकारा, **ण अत्थि** - नहीं होता ॥3 ॥

संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति ॥4 ॥

- **संसार** - संसार में, **आवण्ण** - प्राप्त हुआ जीव, **परस्स** - दूसरे के, **अट्ठा** - लिये, **च**- और अपने लिए, **जं** - जो, **साहारणं** - साधारण, **कम्मं** - कर्म, **करेइ** - करता है, **तस्स** - उस, **कम्मस्स** - कर्म के, **वेयकाले** - फलभोग के समय, **उ** - निश्चय ही, **ते** - वे, **बंधवा** - बंधु आदि, **बंधवयं** - बंधुता का, **ण उवेंति** - पालन नहीं करते हैं, अर्थात् फल भोगने के समय दुःख में हिस्सा नहीं बँटाते यह जीव अपने किये हुए कर्मों को अकेला ही भोगता है ॥4 ॥

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठु मदट्ठुमेव ॥5 ॥

- **पमत्ते** - प्रमादी पुरुष, **इमम्मि** - इस, **लोए** - लोक में, **अदुवा**-अथवा, **परत्था**-परलोक में, **वित्तेण**-धन से **ताणं** - शरण, **ण लभे** - नहीं पाता है, **दीवप्पणट्ठे व** - जिसका दीपक बुझ गया है, ऐसे व्यक्ति के समान, **अणंतमोहे** - अनंत मोहवाला प्राणी, **णेयाउयं** - न्याय युक्त सम्यग् दर्शनादि रूप मुक्ति मार्ग को, **दट्ठुं** - देख कर भी, **अदट्ठुमेव** - न देखने वाला ही रहता है ॥5 ॥

भावार्थ - जैसे दीपक लेकर गुफा में गया हुआ व्यक्ति दीपक के प्रकाश में वहाँ रखी हुई सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु प्रमादवश दीपक बुझ जाने पर उसका वस्तुओं को देखना और न देखना एक-सा हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रुतज्ञान रूप भाव दीपक के प्रकाश में आत्मा मोक्षमार्ग का दर्शन करता है, किन्तु धन आदि में आसक्ति के कारण वह पुनः कर्मों से आवृत्त हो जाता है, फलतः उसका मुक्तिमार्ग का दर्शन करना भी, न करने के समान ही हो जाता है। इस प्रकार धन स्वयं भी जीव का रक्षण नहीं कर सकता है और रक्षा करने वाले सम्यग् दर्शन आदि गुणों का भी घातक होता है।

सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध जीवी, णो वीससे पंडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्ते ॥6॥

- **सुत्तेसु** - द्रव्य और भाव से सोये हुए लोगों के बीच, **यावि** - भी, **पडिबुद्ध जीवी** - द्रव्य और भाव से जाग कर संयम युक्त जीवन जीने वाला, **आसुपण्णे** - आशुप्रज्ञ, **पंडिए** - पंडित मुनि, प्रमादाचरण में, **णो वीससे** - विश्वास नहीं करे, **मुहुत्ता** - काल, **घोरा** - घोर-अनुकम्पा रहित है और, **सरीरं** - शरीर, **अबलं** - निर्बल है अतएव, **भारंड-पक्खी व** - भारण्ड पक्षी के समान, **अप्पमत्ते** - प्रमाद-रहित हो कर सावधानीपूर्वक, **चरे** - विचरे ॥6॥

भावार्थ - आशुप्रज्ञ पंडित मुनि को चाहिए कि धर्म के प्रति असावधान एवं प्रमादी लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं सदा धर्म में तत्पर रहे और जन-साधारण के समान प्रमाद में कतई विश्वास नहीं करें। काल निर्दय है, उसके आगे शरीर सर्वथा अशक्त है। अतएव मुमुक्ष को चाहिए कि भारण्ड पक्षी के समान सदा प्रमाद-रहित हो कर, शास्त्र-विहित अनुष्ठानों का सेवन करें।

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो ॥
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी ॥7॥

- साधु को चाहिए कि मूलगुण आदि स्थानों में, **पयाइं** - पद-पद पर कहीं दोष न लग जाय इस प्रकार, **परिसंकमाणो** - शंका करता हुआ और, **इह** - इस लोक में, **जं किंचि** - गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है उसे, **पासं** - संयम के लिए पाश रूप, **मण्णमाणो** - मानता हुआ, **चरे** - विचरे, **लाभंतरे** - जब तक इस शरीर से विशेष ज्ञान-ध्यान-संयम-तप आदि गुणों का लाभ होता हो, तब तक, **जीविय** - जीवन की, **बूहइत्ता** - वृद्धि करे अर्थात् अन्न-पानी आदि द्वारा सार-सम्भाल करे, किन्तु **पच्छा** - बाद में लाभ न होने की अवस्था में, **परिण्णाय** - ज्ञपरिज्ञा द्वारा शरीर को धर्म-साधन के अयोग्य समझ कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा आहार का त्याग कर, **मलावधंसी** इस औदारिक शरीर का त्याग करें ॥7॥

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहाँ सिक्खिय वम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी किप्पमुवेइ मोक्खं ॥8॥

-**जहाँ**-जिस प्रकार, **सिक्खियवम्मधारी** -सवार की अधीनता में रहकर शिक्षा

पाया हुआ और शरीर पर कवच धारण करने वाला, **आसे**- घोड़ा, युद्ध में शत्रुओं से नहीं मारा जाता अपितु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार गुरु की अधीनता में रहकर शास्त्र-विहित आचार का सेवन करने वाला मुनि। **छंदं णिरोहेण** - स्वच्छन्दता का त्याग करने से, **मोक्खं**- मोक्ष, **उवेइ**-प्राप्त करता है, अतएव गुरु की आज्ञा में रहता हुआ साधु, **पुव्वाइं**- पूर्व, **वासाइं**- वर्ष तक, **अप्पमत्तो**- प्रमाद रहित होकर, **चरे**-विचरण करे, **तम्हा**- इस प्रकार करने से, **मुणी**-साधु, खिप्पं शीघ्र ही, **मोक्खं**- मोक्ष को, **उवेइ**- प्राप्त करता है ॥8॥

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥9॥

- जो व्यक्ति पहले से ही अप्रमत्त होकर ऊपर कहे अनुसार धर्माचरण नहीं करता और पिछली अवस्था के लिए छोड़ देता है, **स**- वह, **पुव्वमेवं**- पहले के समान, **पच्छा**- बाद में भी, **ण लभेज्ज**- धर्माचरण न कर सकेगा। **सासयवाइयाणं**- शाश्वतवादी (निश्चयवादी) निरुपक्रम आयु वालों का 'बाद में धर्म का आचरण कर लेंगे,' **एसोवमा**- यह विचारना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जल के बुलबुले के समान आयु वालों का यह विचारणा ठीक नहीं है, ऐसा व्यक्ति, **आउयम्मि**- आयु के, **सिढ़िले**-शिथिल होने पर तथा, **कालोवणीए**- मृत्यु काल निकट आने पर एवं, **सरीरस्स** - शरीर के, **भेए**- नाश होने के अवसर पर, **विसीयइ**- खेद करता है॥9॥

भावार्थ - आयु के परिमाण को जानने वाले निरुपक्रम आयु वाले लोग यदि कहें कि 'हम पीछे धर्माचरण कर लेंगे' तो उनका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जिनकी आयु का कोई निश्चय नहीं है, न जाने कब टूट जाए, वे यदि बाद में धर्माचरण की बात कहें, तो वे पहले भी न करेंगे और पीछे भी न कर पायेंगे। अन्त में आयु समाप्त होने के समय मौत के निकट आने पर हाथ मलने के सिवाय उनका कोई चारा न होगा।

खिप्पं ण सक्केइ विवेकमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।
समिच्च लोयं समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽपमत्तो ॥10॥

- **खिप्पं**- शीघ्र ही, **विवेकमेउं**- विवेक प्राप्त करना और ब्राह्य संग एवं कषायों का त्याग करना, **ण सक्केइ**- शक्य नहीं है, **तम्हा**- इसलिए, **आयाणुरक्खी**- आत्मा की रक्षा करने वाला, **महेसी**- मोक्षार्थी मुनि, **कामे**- काम-भोगों का, **पहाय**- त्याग

कर और, **लोयं**- लोक का स्वरूप, **समया**- समभाव पूर्वक, समच्चि जान कर, **अप्पमत्तो**- प्रमाद रहित होकर, **समुट्ठाय** - सावधानी पूर्वक, **चरे**- विचरे ॥10॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेग- रूवा समणं चरंतं।
फासा फुसंति असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ॥11॥

- **मोहगुणे**- शब्दादि मोह गुणों को, **मुहुं मुहुं**- बारंबार निरन्तर, **जयंतं**- जीतते हुए और, **चरंतं**- संयम मार्ग में विचरते हुए, **समणं** -साधु को, **अणेगरूवा**- अनेक प्रकार के, **फासा**- शब्दादि विषय, **असमंजसं**- प्रतिकूल रूप से, **फुसंति**- स्पर्श करते हैं किन्तु, **भिक्खू**- साधु को चाहिए कि, **तेसु**- उन पर, **मणसा**- मन से भी, **ण पउस्से**-द्वेष न करे ॥11॥

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं ॥12॥

-**फासा**- शब्दादि विषय, **मंदा**- विवेक-बुद्धि को मन्द करने वाले हैं, **य**- और, **बहुलोहणिज्जा**- बहुत ही लुभाने वाले हैं। मुमुक्षु को, **तहप्पगारेसु**- इस प्रकार के आकर्षक शब्दादि विषयों में, **मणं**- मन, **ण कुज्जा**- न लगाना चाहिए- उनमें रागपूर्वक प्रवृत्ति न करनी चाहिए। उसे **कोहं**- क्रोध को, **रक्खेज्ज**- शान्त करना चाहिए। **माणं**- मान को, **विणएज्ज**- दूर करना चाहिए, **मायं**- माया का, **ण सेवेज्ज**- सेवन न करना चाहिए और, **लोहं**- लोभ का, **पहेज्ज**- त्याग करना चाहिए ॥12॥

जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज - दोसाणुगया परज्झा।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेए ॥13॥ त्ति बेमि॥

- **जे**- जो, **संखया**- संस्कृत यानी बाहरी दिखावे वाले, किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से रहित, **तुच्छ**- निस्सार वचन बोलने वाले, **परप्पवाई**- अन्य तीर्थियों के शास्त्रों की प्ररूपणा करने वाले वादी हैं, **ते**- वे, **पिज्ज- दोसाणुगया**- राग-द्वेष से युक्त हैं इस कारण, **परज्झा**- पराधीन हैं, **एए**- ये लोग, **अहम्मुति**-अधर्म के हेतु हैं इस प्रकार जान कर उनकी, **दुगुंछमाणो**- जुगुप्सा करता हुआ मुमुक्षु, **जाव**- जब तक, **सरीरभेए**- शरीर का नाश न हो तब तक जीवन पर्यन्त, **गुणे**- सम्यग् दर्शनादि गुणों की, **कंखे**- इच्छा करे। **त्ति बेमि**- ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

तत्व विभाग

पच्चीस क्रिया

हिंसा प्रधान दुष्ट व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं। जिससे कर्म का आश्रव होता है ऐसी प्रवृत्ति को ''क्रिया'' कहते हैं। क्रिया से कर्मों का बंध होता है। कर्म बंध के कारण रूप क्रियाएँ 25 प्रकार की हैं।

(1) असावधानी पूर्वक हाथ, पैर आदि शरीर के व्यापार से जो क्रिया लगती है, उसे **कायिकी क्रिया** कहते हैं।

(2) तलवार, बंदूक आदि उप घातक, शस्त्रों का संग्रह या प्रयोग करने से अथवा कठोर दुर्वचन बोलकर झगड़ा पैदा करने से लगने वाली क्रिया **अधिकरणिकी क्रिया** है।

(3) जीव तथा अजीव पदार्थों के ऊपर ईर्ष्या द्वेष करने से जो क्रिया लगती है **प्राद्वेषिकी क्रिया** कहते हैं, जैसे दूसरे को धनवान, सुखी, विद्वान, बलवान देखकर द्वेष करना, बुरा चाहना, **जीव प्राद्वेषिकी** क्रिया है तथा ठोकर लगने पर पत्थर आदि निर्जीव वस्तुओं पर द्वेष भाव लाना **अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया** है।

(4) अपने ही हाथों से अपना सिर, छाती आदि पीटने तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से जो क्रिया लगती है उसे **परितापनिकी क्रिया** कहते हैं।

(5) जल, अग्नि, विष, शस्त्र के द्वारा आत्मघात करने तथा दूसरों का प्राण नाश करने से जो क्रिया लगती है उसे **प्राणिपातिकी क्रिया** कहते हैं।

(6) षट्काय जीवों का उपमर्दन छेदन-भेदन आदि करने से लगने वाली क्रिया **आरम्भिकी क्रिया** है।

(7) परिवार दास-दासी, गाय, भैंस, पक्षी आदि जीवों का संग्रह कर ममत्व भाव रखना एवं धन, अलंकार, वस्त्र, पात्र, गृह आदि अजीव वस्तुओं पर यह मेरा है ऐसा ममत्व मूर्छा भाव रखने से लगने वाली क्रिया **पारिग्रहिकी क्रिया** है।

(8) छल-कपट, झूठा, लेख आदि द्वारा दूसरों को ठगने से लगने वाली क्रिया **माया प्रत्यया क्रिया** है।

(9) व्रत, नियम, त्याग, प्रत्याख्यान न करने से लगने वाली **अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया** है।

(10) वीतराग वचन से विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं, उससे जो क्रिया लगती है उसे **मिथ्या दर्शन प्रत्यया क्रिया** कहते हैं।

(11) किसी रमणीय स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़ा एवं दर्शनीय वस्तुओं को राग-दृष्टि से कौतुहल दृष्टि से देखने से लगने वाली क्रिया **दृष्टिजा क्रिया** है।

(12) किसी रमणीय स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़े के अंग को राग भाव से स्पर्श करने से एवं दर्शनीय वस्तु को राग भाव से स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया **स्पृष्टिका क्रिया** है।

(13) जीव-अजीव रूप किसी बाह्य वस्तुओं के निमित्त से जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है उससे लगने वाली क्रिया **प्रातीत्यिकी क्रिया** है।

(14) प्रशंसा की भावना से दर्शनीय सावद्य वस्तुओं का संग्रह करना और उन वस्तुओं की प्रशंसा किये जाने पर हर्षित होने से जो क्रिया लगती है उसे **सामन्तोप निपातिकी क्रिया** कहते हैं।

(15) अपने हाथ से किसी जीव-अजीव वस्तुओं को नष्ट करने, फेंकने, तोड़ने से लगने वाली क्रिया **स्वहस्तिकी क्रिया** है।

(16) किसी जीव-जीवादि वस्तुओं को निर्दयतापूर्वक, अयतनापूर्वक फेंकने या पटकने से लगने वाली क्रिया **नैसृष्टिकी क्रिया** है।

(17) किसी पर आज्ञा चलाने से या आज्ञा देकर किसी वस्तु को मंगवाने से लगने वाली क्रिया **आज्ञापनिका क्रिया** है।

(18) जीव-जीवादि पदार्थों को चीरने, फाड़ने से अथवा किसी को ठगने के लिए किसी वस्तु की झूठी प्रशंसा करने से लगने वाली क्रिया **वैदारिणिका क्रिया** है।

(19) असावधानी से, उपयोग शून्यता से, वस्तुओं को उठाने-रखने एवं चलने से लगने वाली क्रिया **अनाभोगिकी क्रिया** है।

(20) इस लोक तथा परलोक का ख्याल न करके विरुद्ध आचरण करने से लगने वाली क्रिया **अनवकांक्षा प्रत्ययिकी क्रिया** है।

(21) माया और लोभ पूर्वक व्यवहार करने से लगने वाली क्रिया **पेज्जवत्तिया क्रिया** है।

(22) खुद क्रोध करें अथवा दूसरे को क्रोध उत्पन्न करावें या अभिमान से लगने वाली क्रिया **दोशवत्तिया क्रिया** है।

(23) मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति से लगने वाली क्रिया **प्रायोगिकी क्रिया** है।

(24) बहुत से लोग मिलकर एक साथ, एक ही प्रकार की क्रिया करें, अच्छे बुरे दृश्य देखें या आरम्भजन्य कार्यों को साथ मिलकर करें, उसमें प्रसन्न होवें, उसे **सामुदानिकी क्रिया** कहते हैं।

(25) कषाय रहित आत्माओं को केवल योग मात्र के निमित्त से लगने वाली क्रिया **ईर्यापथिकी क्रिया** है।



श्री भगवती सूत्र शतक 25 उद्देश्य 7 में 4 ध्यान का वर्णन आता है

एक लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करना ध्यान है, अथवा छद्मस्थों का अन्तर्मुहुर्त परिमाण एक वस्तु पर चित्त स्थिर रखना ध्यान कहलाता है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में ध्यान के संक्रमण होने पर ध्यान का प्रवाह चिरकाल तक भी रह सकता है।

ध्यान के 4 भेद :-

1. आर्त्तध्यान 2. रौद्र ध्यान 3. धर्मध्यान 4. शुक्ल ध्यान

1. आर्त्तध्यान :- आर्त्तध्यान दुःख के निमित्त से या दुःख में होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है।

(अ) आर्त्तध्यान के 4 भेद :-

(1) अनिष्ट संयोग :- अमनोज्ञ वस्तुओं का संयोग होने पर उनके वियोग की चिंता करना। इस आर्त्तध्यान का कारण द्वेष है।

(2) इष्ट वियोग :- मनोज्ञ वस्तुओं के संयोग होने पर उसका वियोग न होने की चिंता करना। इस आर्त्तध्यान का कारण राग है।

(3) रोग चिन्ता :- रोग से व्याकुल प्राणी का रोग के वियोग का चिन्तन करना।

(4) निदान :- देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि के तप और ऋद्धि आदि देखकर या सुनकर उनमें आसक्ति लाना और यह सोचना कि मैंने जो तप, त्याग आदि धर्म कार्य किये हैं उनके फलस्वरूप मुझे भी ऋद्धि की प्राप्ति हो। इस प्रकार की संसारी चिन्ता करना।

(ब) आर्त्तध्यान के 4 लक्षण :-

1. आक्रन्दन - जोर-जोर से रोना, चिल्लाना।
2. शोचन - दीन भाव धारण करना, शोक करना।
3. तेपनता - टप-टप आंसू गिराना।
4. परिवेतना - वार-वार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।

इन चार लक्षणों से आर्त्तध्यान जाना जाता है। राग, द्वेष, मोह युक्त प्राणी संसार की

वृद्धि करता है। सामान्यतः तिर्यंच गति में जाता है।

2. रौद्रध्यान :- हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षण के लिए जो सतत् चित्त प्रवृत्ति होती है वह रौद्र ध्यान है।

(अ) रौद्रध्यान के 4 भेद :-

1. हिंसानुबन्धि - प्राणियों को निर्दयता पूर्वक मारने का निरंतर चिंतन करना।
2. मृषानुबन्धि - दूसरों को ठगने के लिए, उत्तम सिद्धान्तों को झुठलाने के लिए असत्य वचन कहने का सतत् चिंतन करना।
3. चौर्यानुबन्धि - तीव्र लोभ के वशीभूत होकर किसी भी वस्तु को चुराने या लूटने का सतत् चिंतन करना।
4. संरक्षणानुबन्धि - धन, संतान आदि के संरक्षण हेतु दूसरों का उपघात करने की कषायमयी वृत्ति का सतत् चिंतन करना।

(ब) रौद्रध्यान के 4 लक्षण :

1. ओसन्न दोष - बहुलता से हिंसा, झूठादि में से किसी एक में प्रवृत्ति करना।
2. बहुल दोष - हिंसादि सभी दोषों में प्रवृत्ति करना।
3. अज्ञान दोष अथवा नाना दोष - अज्ञान से कुशास्त्र में श्रद्धा, तथा हिंसादि में धर्म बुद्धि से प्रवृत्ति करना अथवा विविध हिंसादि के उपायों में अनेक बार प्रवृत्ति करना।
4. आमरणान्त दोष - मरणपर्यन्त क्रूर हिंसादि कार्यों में पश्चाताप न कर हिंसादि में प्रवृत्ति करते रहना।

ऐसे कठोर और संकलिष्ट परिणाम वाला, दूसरों को दुखी देखकर प्रसन्न होने वाला, ऐहिक, परलौकिक भय से रहित, अनुकम्पा भाव से रहित, अकार्य कर पश्चाताप नहीं करने वाला रौद्र ध्यानी सामान्यतः नरक गति में जाता है।

3. धर्मध्यान :- तत्वों और श्रुतचरित्र रूप धर्म के संबंध में सतत् चिंतन, धर्मध्यान कहलाता है।

(अ) धर्मध्यान के 4 भेद :-

1. आज्ञा विचय - जिनेश्वर देव की वाणी सत्य है, परम सत्य है। इस प्रकार

का चिंतन करना।

2. अपाय विचय - राग, द्वेष कषाय आदि के दुष्परिणामों का चिंतन करना।

3. विपाक विचय - यह जीव स्वयं ही कर्मों का कर्ता है स्वयं ही कर्म के फल का भोक्ता है। इस प्रकार का चिंतन करना।

4. संस्थान विचय - चौदह राजू प्रमाण लोक का, द्वीप, समुद्र, नरक, स्वर्ग आदि के आकार का, जीव की गति-आगति, उत्पाद व्यय धौव्य का चिन्तन एवं अनादि अनन्त संसार सागर से पार करने वाली ज्ञान दर्शन चारित्र तप संवर रूपी नौका का विचार करना।

(ब) धर्मध्यान के चार लक्षण

1. आज्ञा रुचि - जिनेश्वर देव की आज्ञा पर रुचि रखना।
2. निसर्ग रुचि - पर उपदेश के बिना स्वभाव से ही तत्वों पर श्रद्धा करना।
3. सूत्र रुचि - आगम प्रतिपादित तत्वों पर रुचि रखना।
4. अवगाढ़ रुचि - द्वादशांगी का विस्तार पूर्वक ज्ञान कराके जिन प्रणित भावों पर श्रद्धा रखना।

(स) धर्मध्यान के चार आलम्बन

1. वाचना - सूत्रादि का पठन पाठन
2. पृच्छना - सूत्रादि में शंका आदि होने पर निवारण हेतु प्रश्न पूछना।
3. परिवर्तना - पढ़े हुए सूत्रादि की पुनः पुनः आवृत्ति करना।
4. अनुप्रेक्षा - सूत्रादि का चिन्तन, मनन करना।

(द) धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)

1. एकत्व भावना - मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं और न मैं किसी का हूँ। ऐसा चिंतन करना।

2. अनित्य भावना - संसार के सभी पदार्थ धन-दौलत परिवार शरीर आदि के नश्वरता का चिंतन करना।

3. अशरण भावना - जन्म जरा मृत्यु से पीड़ित प्राणी के लिए कोई भी शरण

रूप नहीं है। केवल जिनेन्द्र प्रवचन ही शरण रूप है ऐसा चिन्तन करना।

4. संसार भावना - संसार की विचित्रताओं का चिंतन करना जैसे - एक भव की माता अन्य भव में स्त्री, पुत्री, बहिन बन जाती है।

4. शुक्लध्यान :- जो आत्मा के आठ कर्मरूपी मैल को धोकर उसको स्वच्छ बना देता है वह शुक्ल ध्यान है।

(अ) शुक्लध्यान के 4 भेद :-

1. पृथकत्व वितर्क सविचार - श्रुत के अनुसार विविध नयों से पदार्थों की पर्यायों का भिन्न-भिन्न रूप में चिंतन करना।

2. एकत्व वितर्क अविचार - श्रुत के अनुसार उत्पाद आदि पर्यायों के एकत्व (अभेद) से किसी एक पदार्थ का अथवा पर्याय का स्थिर चित्त से चिन्तन करना।

3. सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति - मोक्ष जाने के पहले केवली भगवान कायिकी उच्छ्वास आदि सूक्ष्म क्रिया का आश्रय लेकर शेष योगों को रोक देना।

4. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती - शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली जब सब योगों का निरोध कर लेते हैं तब मानसिक, वाचिक, कायिक क्रिया नहीं होती। आत्मप्रदेश सर्वथा निष्प्रकम्प हो जाते हैं, वह स्थिति समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती ध्यान है।

(ब) शुक्लध्यान के 4 लक्षण :-

1. अव्यथः :- शुक्लध्यानी देवता, मनुष्य तिर्यंच आदि के उपसर्गों से चलित नहीं होते।

2. असम्मोह :- शुक्लध्यानी अत्यन्त गहन सूक्ष्म विषयों में अथवा देवादिकृत माया में सम्मोह नहीं होते।

3. विवेक :- शुक्लध्यानी आत्मा को देह से एवं सर्व संयोगों से भिन्न समझते हैं।

4. व्युत्सर्ग :- शुक्लध्यानी निस्संग होने से देह एवं उपधि का त्याग करते हैं।

(स) शुक्लध्यान के 4 आलम्बन

1. क्षमा - क्रोध न करना तथा उदय में आते हुए क्रोध को विफल करना। अर्थात् क्षमावन्त होवे।

2. मुक्ति - उदय में आये हुए लोभ को विफल करना अर्थात् निर्लोभी होवें।

3. आर्जव - माया को उदय में नहीं आने दें अर्थात् सरल होवें।

4. मार्दव - मान को उदय में नहीं आने दें अर्थात् कोमल होवें।

(द) शुक्लध्यान की 4 अनुप्रेक्षा

निम्न चार भावनाओं से शुक्लध्यान परिपुष्ट बनता है।

1. अनन्तानुवर्तितानुप्रेक्षा :- यह जीव अनन्तकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

2. विपरिणामानुप्रेक्षा :- जैसे सन्ध्याकाल की लालिमा इन्द्रधनुष और ओस बिन्दु मनोहर प्रतीत होते हैं, परन्तु क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही देखते-देखते यह सुन्दर शरीर जरा जीर्ण होकर राख में मिल जाता है, इस प्रकार वस्तु परिणमन का चिन्तन करना।

3. अशुभानुप्रेक्षा :- धिक्कार है इस शरीर को जिसमें एक सुन्दर रूप वाला अभिमानी मनुष्य मरकर अपने ही मृत शरीर में कीड़े के रूप में उत्पन्न हो जाता है इस प्रकार संसार के अशुभ स्वरूप का चिन्तन करना।

4. अपायानुप्रेक्षा :- आश्रवों से होने वाले दुष्परिणामों का चिन्तन करना।

इस प्रकार आर्त्तध्यान के 8, रौद्रध्यान के 8, धर्मध्यान के 16, शुक्लध्यान के 16 भेद हैं। चार ध्यानों में से धर्मध्यान और शुक्लध्यान प्रशस्त एवं निर्जरा के कारण होने से ग्राह्य है तथा आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त कर्मबन्ध और संसार वृद्धि का कारण होने से त्याज्य है।



लघु दण्डक का थोकड़ा

लघु दण्डक

जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति इसका मुख्य आधार है। इसमें 24 दण्डकों का 25 द्वारों से विश्लेषण किया गया है।

25 द्वार- •1. शरीर द्वार, 2. अवगाहना, 3. संहनन, 4. संस्थान, 5. कषाय, 6. संज्ञा, 7. लेश्या, 8. इन्द्रिय, 9. समुद्घात, 10. संज्ञी, 11. वेद, 12. पर्याप्ति, 13. दृष्टि, 14. दर्शन, 15. ज्ञान, अज्ञान, 16. योग, 17. उपयोग, 18. आहार, 19. उत्पाद, 20. स्थिति, 21. समोहया असमोहया मरण 22. च्यवन, 23. गति-आगति, 24. प्राण, 25. योग।

गाथा-

नेरइया असुराई, पुढ़वाई बेइन्दियादओ चेव।
पंचिन्दिय-तिरिय-नरा, वंतर-जोइसिस-वेमाणी ॥1॥

संग्रहणी गाथाएं- जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति

सरीरोगाहण-संघयण-संठाण-कसाय तह य हुंति
सन्नाओ लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जती ॥1॥
दिट्ठी-दंसण-नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई च्चेव पाणे जोगे ॥2॥

1. शरीर द्वार

जो जीर्ण-शीर्ण अर्थात् विनाश होने वाला है, उसे शरीर कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं- 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कार्मण।

1. **औदारिक शरीर** - उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।
2. **वैक्रिय शरीर** - वैक्रिय पुद्गलों से बने हुए जिस शरीर में विविध अथवा विशिष्ट क्रियाएं होती है; उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। इस शरीर वाला एक, अनेक, छोटा

• किसी भी वस्तु (स्वरूप) को समझने के प्रकार को द्वार कहते हैं।

बड़ा, दृश्य, अदृश्य आकाशचारी तथा भूमिचर आदि अनेक रूप बना सकता है। वैक्रिय शरीर दो तरह का होता है - औपपातिक और लब्धि प्रत्यय। उपपात जन्म वाले देव तथा नैरयिक के औपपातिक वैक्रिय शरीर होता है। मनुष्य और तिर्यञ्च के लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

3. **आहारक शरीर** - प्राणीदया; तीर्थंकर, ऋषिदर्शन, सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन तथा संशय निवारण के लिए चौदह पूर्वधारी आहारक लब्धि सम्पन्न मुनिराज जघन्य देशोन एक हाथ तथा उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण स्फटिक रत्न के समान निर्मल पुतला निकालते हैं।

प्राणीदया हेतु निकाला गया पुतला आकाश में स्थिर रहकर उद्घोष करता तथा संशय निवारण हेतु निकाला गया पुतला तीर्थंकर भगवन्तों की सन्निधि में पहुंचकर उनसे प्रश्नादि पूछकर समाधान प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त में पुनः लौटकर आ जाता है। इस तरीके से जिस अत्यन्त निर्मल शरीर का आहरण यानी निर्माण किया जाता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

4. **तेजस शरीर** - तेजस पुद्गलों का विकार, परिणाम तेजस शरीर है। उष्णता इस शरीर का चिन्ह है। तैजस शरीर आहार को पचाता है।

5. **कार्मण शरीर** - जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। तेजस व कार्मण ये दो शरीर सभी संसारी जीवों में होते हैं।

समस्त संसारी जीवों के तैजस शरीर और कार्मण शरीर, ये दो शरीर अवश्य (नियमा) होते हैं।

1. नैरयिक और देवता में शरीर पावे 3 वैक्रिय तैजस और कार्मण।
2. चार स्थावर- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों में शरीर पावे तीन- औदारिक तेजस कार्मण। वायुकाय में शरीर पावे चार- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे तीन-औदारिक, तैजस और कार्मण।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे चार- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
5. गर्भज मनुष्य * में शरीर पावे पांच- 1. औदारिक, 2. वैक्रिय,

---

* जहां जहां गर्भज मनुष्य कहा है वहां संख्यात वर्ष वाले मनुष्य समझना।

3. आहारक, 4. तैजस और 5. कार्मण।

6. युगलिक मनुष्यों • के भेद- 5. हेमवत, 5. हैरण्यवत, 5. हरिवास, 5.रम्यक्वास, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु और 56 अन्तर्द्वीप में शरीर पावे तीन- 1. औदारिक, 2. तैजस और 3. कार्मण।

7. सिद्ध भगवान के शरीर नहीं, अशरीरी हैं।

2. अवगाहना द्वार

जीव का शरीर जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे, उसको **अवगाहना** कहते हैं। वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 1000 यो. झाझेरी है। (यद्यपि तैजस, कार्मण शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना 14 राजु लोक प्रमाण है, तथापि इस थोकड़े में 1000 यो. झाझेरी तक ही प्रयुक्त होने से यहां इतना ही उत्कृष्ट ग्रहण किया है) उत्तर वैक्रिय करे तो ज. अंगुल का असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक लाख यो. झाझेरी है।

1. पहली पृथ्वी के नैरयिक से सातवीं पृथ्वी तक के नैरयिक के भवधारणीय शरीर की अवगाहना, जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी के नैरयिक की पौने आठ धनुष 6 अंगुल, दूसरी नारकी के नैरयिक की साढ़े पंद्रह धनुष 12 अंगुल की, तीसरी नारकी के नैरयिको की सवा इकतीस धनुष, चौथी नारकी के नैरयिको की साढ़े बासठ धनुष, पांचवीं नारकी के नैरयिको की सवा सौ धनुष, छठी नारकी के नैरयिको की दो सौ पचास धनुष, सातवीं नारकी के नैरयिको की पांच सौ धनुष

उत्तर वैक्रिय करें, तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे सातवीं नारकी के नैरयिको की भवधारणीय शरीर की अवगाहना 500 धनुष की और उत्तर वैक्रिय करें तो 1000 धनुष की कर सकता है।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले, दूसरे देवलोक के देवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 7 हाथ की।

आगे सभी की ज. अंगुल के असं. भाग उ. इस प्रकार है -

तीसरे और चौथे देवलोक के देवों की 6 हाथ की, पाँचवें-छठे देवलोक के देवों

• जहाँ जहाँ युगलिक मनुष्य कहा है वहां असंख्यात वर्ष वाला मनुष्य समझना।

की 5 हाथ की, सातवें-आठवें देवलोक के देवों की 4 हाथ की, नौवें से बारहवें देवलोक के देवों की 3 हाथ की, नव ग्रैवेयक के देवों की 2 हाथ की, पांच अनुत्तर विमान के देवों की 1 हाथ की।

उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक तक एक लाख योजन की। नव ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में वैक्रिय करने की शक्ति तो होती है किन्तु करते नहीं हैं।

2. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग। किन्तु ज. से उत्कृष्ट असंख्यात गुण अधिक है। वनस्पतिकाय की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाझेरी, कमल नाल की अपेक्षा। वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना ज. और उ. अंगुल के असंख्यातवें भाग।

3. बेइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 12 योजन।

तेइन्द्रिय की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उ. 3 गाऊ।

चउरिन्द्रिय की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उ.4 गाऊ।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। जलचर की अवगाहना ज. अंगुल के असं. भाग, उ.1000 योजन की।

स्थलचर की जघन्य अंगुल के असं. भाग, उ. पृथक्त्व गाऊ।

खेचर की जघन्य अंगुल के असं. भाग, उ. पृथक्त्व धनुष।

उरपरिसर्प की जघन्य अंगुल के असं. भाग, उ. पृथक्त्व योजन।

भुजपरिसर्प की जघन्य अंगुल के असं. भाग, उ.पृथक्त्व धनुष

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उसपरिसर्प, भुजपरिसर्प। जलचर की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 1000 योजन।

स्थलचर की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 6 गाऊ।

खेचर की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष।

उरपरिसर्प की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उ. 1000 योजन।

भुजपरिसर्प की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग, उ. पृथक्त्व गाऊ।

सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना ज. अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 योजन

5. गर्भज मनुष्यों की अवगाहना- ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट तीन गाऊ। काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है -

पहले आरे के प्रारंभ में तीन गाऊ।

पहला पूर्ण होने और दूसरे के प्रारंभ में दो गाऊ।

दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारंभ में एक गाऊ।

तीसरा पूर्ण होते और चौथे के प्रारंभ में 500 धनुष।

चौथा पूर्ण होते और पांचवें के प्रारंभ में 7 हाथ।

पांचवां पूर्ण होते और छठे के प्रारंभ में 2 हाथ।•

छठा आरा पूर्ण होते एक हाथ।

यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्यातवें भाग हैं।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उलटा होता है। यदि मनुष्य वैक्रिय करे, तो अवगाहना ज.अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी।

6. युगलिक मनुष्य की अवगाहना- ज. अंगुल के असं. भाग तथा उत्कृष्ट हेमवत और हैरण्यवत में एक गाऊ। हरिवास और रम्यक्वास में दो गाऊ। देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाऊ। अन्तर्द्वीप में आठ सौ धनुष। इन सब में ज. देशऊणी और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।

7. श्री सिद्ध भगवान की अवगाहना-आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल (दो हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा) मध्यम चार हाथ और सोलह अंगुल

नोट- पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक ही नहीं समझना चाहिए। किन्तु उससे भी ज्यादा हो सकता है। अर्थात् 'अनेक' अर्थ उपयुक्त है। जैसे असन्नी ति. के उरपरिसर्प की अवगाहना उत्कृष्ट 12 यो. की कही गई है यदि पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक ही लेते हैं तो उरपरिसर्प की आवगाहना संगत नहीं बैठती।

• आधार जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति द्वितीय वक्षस्कार एवं जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग 1 (तृतीय संस्करण) पृष्ठ 685

(7 हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा) उत्कृष्ट 333 धनुष 32 अंगुल (500 धनुष वाले मनुष्य की अपेक्षा)।

3. संहनन द्वार

हड्डियों के बन्धन विशेष को अथवा उस-उस प्रकार के बन्धन के समान दृढ़ता को **संहनन** कहते हैं। इसके छह भेद हैं -

1. वज्रऋषभ-नाराच संहनन - वज्र का अर्थ- कील है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनों ओर से मर्कट-बन्ध है। जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और जिसमें इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, उसे 'वज्र-ऋषभ- नाराच संहनन' कहते हैं।

2. ऋषभ- नाराच संहनन- जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नहीं हो, उसे 'ऋषभ- नाराच - संहनन' कहते हैं।

3. नाराच-संहनन- जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-वन्ध द्वारा जुड़ी हड्डियाँ हों, परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन-पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो, उसे 'नाराच-संहनन' कहते हैं।

4. अर्धनाराच-संहनन - जिस संहनन में एक ओर मर्कट-वन्ध हो, उसे 'अर्धनाराच-संहनन' कहते हैं।

5. कीलिका-संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ केवल कील से जुड़ी हुई हों, उसे 'कीलिका-संहनन' कहते हैं।

6. सेवार्त्तक-संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ पर्यन्त भाग में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हैं तथा सदा चिकने पदार्थों के प्रयोग एवं तैलादि् की मालिश की अपेक्षा रखती हैं, उसे 'सेवार्त्तक-संहनन' कहते हैं।

1. नारकी और देवता में संहनन नहीं। नारकी में अशुभ पुद्गल परिणमें और देवों में शुभ परिणमें।

2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक सेवार्त्तक संहनन है।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक सेवार्त्तक संहनन है।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संहनन पावे छहों-

1. वज्र ऋषभ नाराच संहनन, 2. ऋषभ नाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4.अर्द्ध नाराच संहनन, 5. कीलिका संहनन, 6. सेवार्त्तक संहनन।

5. गर्भज मनुष्य में संहनन पावे छहों।

6. युगलिक मनुष्य में वज्र ऋषभ नाराच संहनन।

7. सिद्ध भगवान में संहनन नहीं।

4. संस्थान द्वार

नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को **संस्थान** कहते हैं। इसके छह भेद हैं -

1. समचतुरस्र (समचोरस)- ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को 'समचोरस संस्थान' कहते हैं।

2. न्यग्रोधपरिमण्डल - वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात् जिसमें नाभि से ऊपर का भाग प्रशस्त विस्तृत लक्षणयुक्त पूर्ण एवं शास्त्रानुसार प्रमाण वाला हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे 'न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान' कहते हैं।

3. सादि - ऊपर वाले लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो, जैसे साँप की बाँकी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे 'सादि संस्थान' कहते हैं।

4. कुब्जक (कुबड़ा) - जिस शरीर के हाथ, पाँव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हों और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे 'कुब्जक संस्थान' कहते हैं।

5. वामन - बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पाँव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे 'वामन संस्थान' कहते हैं।

6. हुण्डक - जिस शरीर में सभी अंगोपांग किसी खास आकृति के न हों (खराब हों), उसे 'हुण्डक संस्थान' कहते हैं।

1. नैरयिको के भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर में एक हुण्डक संस्थान है। देवों के भवधारणीय शरीर में एक समचोरस संस्थान और उत्तर वैक्रिय शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है।

2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य के एक हुण्डक संस्थान है।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक हुण्डक संस्थान होता है।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संस्थान पावे छहों-

   1. समचतुरस्र संस्थान (समचोरस), 2. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, 3. सादि संस्थान, 4. कुब्जक संस्थान, 5. वामन संस्थान, 6. हुण्डक संस्थान।

5. गर्भज मनुष्यों में छहों संस्थान पाये जाते हैं।

6. युगलिक मनुष्यों में समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है।

7. सिद्ध भगवान् में संस्थान नहीं।

5. कषाय द्वार

क्रोधादि रूप आत्मा के विभाव परिणामों को **कषाय** कहते हैं।

इसके चार भेद हैं- क्रोध, मान, माया, लोभ।

1. सभी जीवों में कषाय पावे चारों -क्रोध, मान, माया, लोभ । मनुष्य अकषायी भी होते हैं।

2. सिद्ध भगवान् अकषायी हैं।

6. संज्ञा द्वार

आहारादि की संवेदना विशेष को **संज्ञा** कहते हैं। इसके चार भेद हैं ।

1. 24 ही दण्डकों में चारों संज्ञा पाई जाती है-

   1. आहार-संज्ञा 2. भय-संज्ञा, 3. मैथुन-संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। मनुष्य नोसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

2. सिद्ध भगवान् में संज्ञा नहीं, नोसंज्ञोपयुक्त हैं।

7. लेश्या द्वार

योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को **लेश्या** कहते हैं। इसके छह भेद हैं ।

1. पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या है। तीसरी नारकी में कापोत और नील लेश्या। चौथी नारकी में एक नील लेश्या। पांचवीं नारकी में नील और कृष्ण लेश्या। छठी नारकी में कृष्ण लेश्या। सातवीं नारकी में महा कृष्ण लेश्या। भवनपति और वाणव्यन्तर देव में पहली चार लेश्या होती हैं- 1. कृष्ण लेश्या, 2. नील- लेश्या, 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या। ज्योतिषी तथा पहले-दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या। तीसरे, चौथे और पाँचवें देवलोक में पद्म लेश्या। छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या। पांच अनुत्तर विमान में परम शुक्ल लेश्या।
2. पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय- इन तीनों में चार लेश्या पायी जाती हैं- कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या। तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य में तीन लेश्या पायी जाती है- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या पायी जाती है- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छहों लेश्या पाई जाती है-
   1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. तेजो, 5. पद्म, 6. शुक्ल।
5. गर्भज मनुष्य में छहों लेश्या तथा अलेशी भी होते हैं।
6. युगलिक मनुष्य में चार लेश्या पाई जाती है।
   कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या।
7. सिद्ध भगवान में लेश्या नहीं, अलेशी हैं।

8. इन्द्रिय द्वार

इन्द्र का अर्थ **'आत्मा'**। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान करती है उसे **इन्द्रिय** कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं -

1. नारकी और देवों में पांचों इन्द्रिय- 1. श्रोत्रेन्द्रिय 2. चक्षुरिन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय, 4. रसनेन्द्रिय 5. स्पर्शनेन्द्रिय।
2. पांच स्थावर में एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे और असन्नी मनुष्य में पांचों ही इन्द्रियां पावे।
3. बेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे दो- रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। तेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे तीन- घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। चौइन्द्रिय में चार इन्द्रिय पावे- चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। शेष सभी जीवों में पांचों इन्द्रिय पावे। मनुष्य अनिन्द्रिय भी होते हैं।
4. सिद्ध भगवान में इन्द्रिय नहीं, अनिन्द्रिय हैं।

9. समुद्घात द्वार

सम-एकी भाव से, उद्-प्रबलता से, घात-बाहर निकलना। वेदना आदि के साथ तन्मय होकर मूल शरीर को बिना छोड़े प्रबलता से आत्म प्रदेशों को बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का नाश करना **समुद्घात** कहलाता है। इसके सात भेद हैं-

1. वेदनीय समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुद्घात है। इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है। साता वेदनीय कर्म का समुद्घात नहीं होता है।

2. कषाय समुद्घात - तीव्र क्रोधादि कषायों के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना कषाय समुद्घात कहलाता है। इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है। चारों कषायों का समुद्घात होता है।

3. मारणांतिक समुद्घात - मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लंवा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं जाड़ाई वाला) आत्मप्रदेशों का दंड निकालना, मारणांतिक समुद्घात कहलाता है।

4. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये आत्म-प्रदेशों का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन

लंबा तक का दण्ड निकालना (जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) वैक्रिय समुद्घात कहलाता है। इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है।

5. तैजस् समुद्घात - शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस् पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये संख्यात योजन तक लंबा एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशों का दंड निकालना (यह भी जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण ही होता है) तैजस् समुद्घात कहलाता है। इसमें तैजस् नामकर्म की क्षपणा होती है।

6. आहारक समुद्घात- जीवदया, ऋद्धि दर्शन, ज्ञान ग्रहण या संशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना (जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) आहारक समुद्घात कहलाता है। इसमें आहारक शरीर नामकर्म की क्षपणा होती है।

7. केवली समुद्घात - वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिये चार समयों में आत्मप्रदेशों को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः संकोचित करके शरीरस्थ हो जाना, केवली समुद्घात कहलाता है। इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की क्षपणा होती है। जिन की आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है, उनकी स्थिति सम करने के लिये केवली समुद्घात करते हैं। केवली समुद्घात के अन्तर्मुहूर्त्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है।

1. **नारकी** में समुद्घात चार-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय। भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक अनुक्रम से पांच समुद्घात। नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में भी शक्ति से समुद्घात पांच पावे, परन्तु समुद्घात करते हैं तीन- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक। वैक्रिय और तैजस समुद्घात नहीं करते हैं।
2. चार स्थावर- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पांचों में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय, और मारणांतिक समुद्घात। वायुकाय में समुद्घात पावे चार- वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय और मारणांतिक।
4. सन्नी तिर्यंच में समुद्घात पावे पांच-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस।

5. गर्भज मनुष्य में समुद्घात पावे सातों ही-

1. वेदनीय, 2. कषाय, 3. मारणांतिक, 4. वैक्रिय 5. तैजस, 6. आहारक, 7. केवली।

6. युगलिक मनुष्य में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।

7. सिद्ध भगवान में समुद्घात नहीं।

10. सन्नी द्वार

जिसके मन हो उसे **सन्नी** और जिसके मन नहीं हो उसे **असन्नी** कहते हैं।

1. पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर में सन्नी-असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं। असन्नी कुछ देर असन्नी रहकर फिर सन्नी हो जाते हैं। दूसरी नैरयिक से सातवीं पृथ्वी के नैरयिक तक, ज्योतिषी से पांच अनुत्तर विमान तक सन्नी ही उत्पन्न होते हैं।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य असन्नी हैं, सन्नी नहीं।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय- ये सभी सन्नी नहीं, असन्नी हैं।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय सन्नी।
5. गर्भज मनुष्य सन्नी तथा नो सन्नी नो असन्नी।
6. युगलिक मनुष्य सन्नी।
7. सिद्ध भगवान् सन्नी-असन्नी नहीं, नोसन्नोवउत्ता हैं।

11. वेद द्वार

नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपुंसक रूप चिह्न को द्रव्य वेद, तथा जीव की विषय भोग की अभिलाषा को भाव वेद कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं -

1. नारकी में एक नपुंसक वेद पावे। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले-दूसरे देवलोक में वेद दो- स्त्री वेद, और पुरुष वेद। तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक पुरुष वेद होता है।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक नपुंसक वेद होता है।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक नपुंसक वेद।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीनों ही वेद पाये जाते हैं।

5. गर्भज मनुष्य में तीनों वेद पाये जाते हैं एवं अवेदी भी होते है।

6. युगलिक मनुष्य में दो वेद- स्त्री वेद और पुरुष वेद।

7. सिद्ध भगवान् में वेद नहीं अवेदी हैं।

12. पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार, शरीरादि रूप में परिणमाने की आत्म शक्ति विशेष को **पर्याप्ति** कहते हैं। इसके छह भेद होते हैं -

1. नारकी में पर्याप्ति पावे छह और देव में पर्याप्ति पावे पांच। क्योंकि भाषा और मन- ये दोनों पर्याप्तियां शामिल बांधते हैं।

2. पांच स्थावर में चार पर्याप्ति पावे-आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे पांच- आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और भाषा पर्याप्ति।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्ति पाई जाती है।

5. गर्भज मनुष्य में छहों पर्याप्ति पाई जाती है।

6. युगलिक मनुष्य में छहों पर्याप्ति पाई जाती है।

7. सिद्ध भगवान नो पर्याप्त-नो अपर्याप्त हैं।

13. दृष्टि द्वार

तत्व विचारणा की रुचि को **दृष्टि** कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं-

1. सम्यक् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यग् मिथ्या मिश्र दृष्टि।

सम्यक् दृष्टि - वीतराग देव की वाणी पर अखण्ड श्रद्धा रखने वाला।

मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी को देशतः या सर्वतः मिथ्या मानता है।

सम्यग् मिथ्या मिश्र दृष्टि - वीतराग वाणी के प्रति न रूचि हो न अरुचि हो।

1. नारकी और भवनपति से लगा कर नव ग्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनों ही- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि, 3. सम्यग्-मिथ्या दृष्टि। (मिश्र) 15 परमाधार्मिक 3.किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि ही होती है।

   पांच अनुत्तर विमान में एक सम्यग् दृष्टि ही होती है।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक मिथ्या दृष्टि।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दृष्टि-सम्यग् दृष्टि और मिथ्या दृष्टि।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीनों ही दृष्टि पाई जाती है।
5. गर्भज मनुष्य में तीनों ही दृष्टि पाई जाती है।
6. युगलिक मनुष्य में 30 अकर्म भूमि में दो दृष्टि- 1. सम्यग् दृष्टि और 2. मिथ्या दृष्टि और 56 अन्तर्द्वीपों में एक मिथ्या दृष्टि।
7. सिद्ध भगवान् में एक सम्यग् दृष्टि।

14. दर्शन द्वार

जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको **दर्शन** कहते हैं। इसके चार भेद हैं -

1. चक्षु दर्शन - नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को 'चक्षु दर्शन' कहते हैं।

2. अचक्षु दर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अचक्षु दर्शन' कहते हैं।

3. अवधि दर्शन - अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अवधि दर्शन' कहते हैं।

4. केवल दर्शन - केवलज्ञान के उपयोग के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को 'केवल-दर्शन' कहते हैं।*

---

* छद्मस्थों में पहले दर्शन का उपयोग होता है, वाद में ज्ञान का उपयोग होता है। अछद्मस्थों (केवली) में पहले ज्ञान का उपयोग होता है, फिर दर्शन का उपयोग होता है।

1. नारकी और देवों में दर्शन पावे तीन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

2. पांच स्थावर में एक अचक्षुदर्शन होता है।

असन्नी मनुष्य में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन- ये दो दर्शन हैं।

3. बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में एक अचक्षुदर्शन है। चौइन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दर्शन- चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दर्शन पावे तीन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

5. गर्भज मनुष्य में दर्शन पावे चार- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

6. युगलिक मनुष्य में दर्शन पावे दो- चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

7. सिद्ध भगवान में एक केवलदर्शन।

15. ज्ञान-अज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला बोध ज्ञान कहलाता है। इसके दो भेद हैं- सम्यग् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान।

सम्यग् ज्ञान के पाँच भेद हैं- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अविधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

1. मतिज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं।

2. श्रुतज्ञान - मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ को विशेष एवं स्पष्ट रूप से जानना श्रुतज्ञान कहलाता है। जैसे - "घट" शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कंवुग्रीवादिरूप घट का ज्ञान।

3. अवधिज्ञान - मन व इन्द्रियों की सहायता के विना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने।

4. मनः पर्ययज्ञान - मन व इन्द्रियों की सहायता के विना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो साधु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन में रही हुई पर्यायों को स्पष्ट जानें।

5. **केवलज्ञान** - जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं - 1. मतिअज्ञान, 2. श्रुतअज्ञान, 3. विभंगज्ञान। ये तीन अज्ञान हैं।

1. नारकी और देवों में ज्ञान पावे तीन- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। अज्ञान- नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान पावे तीन- मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। पांच अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं होता। ज्ञान पावे तीन।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में ज्ञान नहीं होता, मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान- ये दो अज्ञान होते हैं।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो ज्ञान- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। तथा दो अज्ञान।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे तीन-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। अज्ञान पावे तीनों।
5. गर्भज मनुष्य में ज्ञान पावे पांच- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान,मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। अज्ञान पावे तीनों।
6. 30 अकर्मभूमि में दो ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। दो अज्ञान मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान। 56 अन्तर्द्वीप में दो अज्ञान। ज्ञान नहीं।
7. सिद्ध भगवान में एक केवलज्ञान, अज्ञान नहीं।

16. योग द्वार

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को **योग** कहते हैं। इसके 15 भेद हैं-

4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के।

1. नारकी और देवों में योग पावे ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के (वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र योग, कार्मण योग)•
2. चार स्थावर- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य- इन पांचों में योग पावे तीन- 1. औदारिक योग, 2. औदारिक मिश्र योग, 3. कार्मण काय योग। वायुकाय में योग पावे पांच-1. औदारिक योग, 2. औदारिक

• तेजस शरीर की स्वतः कहीं प्रवृत्ति नहीं होती इसलिए तेजस काया योग नहीं होता है।

मिश्र योग, 3. वैक्रिय योग, 4. वैक्रिय मिश्र योग और 5. कार्मण काय योग।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे चार- व्यवहार भाषा, औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग और कार्मण काय योग।

4. सन्नी तिर्यंच में योग पावे 13- चार मन के, चार वचन के और पांच काया के- औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग, वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काय योग।

5. गर्भज मनुष्य में पंद्रह ही योग पावे। 4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के एवं अयोगी भी होते हैं।

6. युगलिक मनुष्य में योग पावे ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के - 1. औदारिक काय योग, 2. औदारिक मिश्र काय योग, 3. कार्मण काय योग।

7. सिद्ध भगवान में योग नहीं, अयोगी हैं।

17. उपयोग द्वार

ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते हैं।

इसके 12 भेद होते हैं - 5 ज्ञान के, 3 अज्ञान के, 4 दर्शन के।

1. नारकी और देवों में नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ- तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन। पांच अनुत्तर विमान में उपयोग पावे छह- तीन ज्ञान और तीन दर्शन।

2. पांच स्थावरों में उपयोग पावे तीन-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन। असन्नी मनुष्य में उपयोग पावे चार- मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

3. बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में उपयोग पावे पांच- दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक दर्शन- अचक्षुदर्शन. चौइन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छह उपयोग- दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उपयोग पावे नौ- 3 ज्ञान, 3. अज्ञान और 3 दर्शन।

5. गर्भज मनुष्य में उपयोग पावे 12- पांच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन।

6. तीस अकर्म भूमि में उपयोग पावे 6- दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन। 56 अन्तर्द्वीपों में उपयोग पावे चार- दो अज्ञान और दो दर्शन।

7. सिद्ध भगवान् में दो उपयोग-केवलज्ञान और केवलदर्शन।

18. आहार द्वार

जीव के द्वारा शरीर के निर्माण, धारण अथवा पोषण के लिए ग्रहण किए जाने वाले पुद्गलों को **आहार** कहते हैं।

जीव 288 प्रकार के पुद्गलों का आहार करता है। आहार तीन प्रकार का होता है- सचित्त, अचित्त, मिश्र। प्रकारान्तर से भी आहार के तीन भेद होते हैं- ओज (शरीर द्वारा), रोम (त्वचा द्वारा), प्रक्षेपाहार (कवल द्वारा) जो ग्रहण किया जाता है।

1. पांच स्थावर को छोड़ शेष सभी जीव छहों दिशा से 288● भेद का आहार लेते हैं।
2. पांच स्थावर 288 भेदों का आहार लेते हैं। दिशा की अपेक्षा- व्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का और कदाचित् पांच दिशा का। निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का। असन्नी मनुष्य आहार लेवे 288 भेद का, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवें।
3. गर्भज मनुष्य छहों दिशा से 288 भेदों का आहार लेते हैं, तथा अनाहार भी होते हैं।
4. सिद्ध भगवान आहारक नहीं अनाहारक होते हैं।

19. उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे **उपपात** कहते हैं।

1. नारकी और भवनपति से लगाकर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध तक ज. 1-2-3 उ. संख्यात उत्पन्न होवे।
2. चार स्थावर में प्रति समय निरन्तर असंख्यात उपजे और वनस्पतिकाय में प्रति समय

● नोट-288 भेद- द्रव्य से- अनंत प्रदेशी, क्षेत्र से- असंख्यात प्रदेशावगाढ़, काल से- 12 भेद एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय, संख्यात समय, असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवें। भाव से-260 भेद एक गुण काला, यावत दसगुण काला, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनंत गुण काला इसी तरह तेरह-तेरह भेद करने से (वर्णादि 20×13), स्पृष्ट, अवगाढ़, अनन्तरावगाढ़, सूक्ष्म, वादर, ऊंचे, नीचे, तीर्छे, आदि, मध्य, अन्त, स्वविषय, आनुपूर्वी और नियमपूर्वक छह दिशा का ग्रहण करें। (1+1+12+260+14) = 288 हुए।

अनन्त उपजे। असन्नी मनुष्य में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उपजे।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात् उत्कृष्ट असंख्यात उपजे।

5. गर्भज मनुष्य में उपपात ज.1-2-3 उ. संख्यात उपजे।

6. युगलिक मनुष्य में ज. 1-2-3 उ. संख्यात उत्पन्न होते हैं।

7. सिद्ध भ. एक समय में ज. 1-2-3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होते हैं।

20. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे **स्थिति** कहते हैं।

समुच्चय नारकी के नेरिये एवं देवता की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

1. **पहली नारकी के नेरिये की स्थिति** जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 1 सागरोपम की।

दूसरी नारकी के नेरिये की ज. एक सागरोपम उ. 3 सागरोपम की।

तीसरी नारकी के नेरिये की ज. 3 सागरोपम उ. 7 सागरोपम की।

चौथी नारकी के नेरिये की ज. 7 सागरोपम उ. 10 सागरोपम की।

पांचवीं नारकी के नेरिये की ज. 10 सागरोपम उ. 17 सागरोपम की।

छठी नारकी के नेरिये की ज. 17 सागरोपम उ. 22 सागरोपम की।

सातवीं नारकी के नेरिये की ज. 22 सागरोपम उ. 33 सागरोपम की।

भवनपति देव की असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं- चमरेन्द्रजी और बलिन्द्रजी। चमरेन्द्र के रहने की चमरचंचा राजधानी, जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में है। बलिन्द्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में है। **चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की**

स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम और उनकी देवी की स्थिति ज. दस हजार वर्ष उ. साढ़े तीन पल्योपम की। शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष उत्कृष्ट डेढ़ पल्योपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन पल्योपम।

बलिन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी। उनकी देवियों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम। शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोंन दो पल्योपम । उनकी देवी की स्थिति ज. दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम। वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम।

ज्योतिषी देवों की स्थिति इनके पांच भेद

1. चन्द्र 2. सूर्य 3. ग्रह 4. नक्षत्र और 5. तारा।

चन्द्र- विमानवासी देवों की स्थिति ज. पाव पल्योपम, उ. 1 पल्योपम और 1 लाख वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष।

सूर्य- विमानवासी देवों की स्थिति ज.पाव पल्योपम उ. 1 पल्योपम और एक हजार वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति ज. पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और 500 वर्ष।

ग्रह- विमानवासी देवों की स्थिति ज. पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति ज. पाव पल्योपम, उ. आधा पल्योपम।

नक्षत्र- विमानवासी देवों की स्थिति ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम और उनकी देवियों की स्थिति ज. पाव पल्योपम उ. पाव पल्योपम झाझेरी।

तारा- विमानवासी देवों की स्थिति ज. पल्योपम के आठवें भाग, उ. पाव पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति ज. पल्योपम के आठवें भाग, उ. पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी।

वैमानिक देवों की स्थिति

पहिले देवलोक के देवों की स्थिति ज. एक पल्योपम, उ. दो सागरोपम। उनकी देवियां दो प्रकार की हैं-

1. परिगृहीता और 2. अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति ज. एक पल्योपम, उ. 7 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज. एक पल्योपम, उ. 50 पल्योपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1. पल्योपम झाझेरी, उ. 2. सागरोपम झाझेरी। उनकी देवियां दो प्रकार की हैं- परिगृहीता और अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति ज. एक पल्योपम झाझेरी उ. 9 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज. एक पल्योपम झाझेरी उ. 55 पल्योपम।

तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 2 सागरोपम उ. 7 सागरोपम।

चौथे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 2 सागरोपम झाझेरी, उ. 7 सागरोपम झाझेरी।

पांचवे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 7 सा. उ. 10 सा.।

छठे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 10 सा. उ. 14 सा.।

सातवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 14 सा. उ. 17 सा.।

आठवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 17 सा. उ. 18 सा.।

नौवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 18 सा. उ. 19 सा.।

दसवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 19 सा. उ. 20 सा.।

ग्यारहवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 20 सा. उ. 21 सा.।

बारहवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 21 सा. उ. 22 सा.।

पहले ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 22 सा. उ. 23 सा.।

दूसरे ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 23 सा. उ. 24 सा.।

तीसरे ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 24 सा. उ. 25 सा.।

चौथे ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 25 सा. उ. 26 सा.।

पांचवें ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 26 सा. उ. 27 सा.।

छठे ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 27 सा. उ. 28 सा.।

सातवें ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 28 सा. उ. 29 सा.।

आठवें ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 29 सा. उ. 30 सा.।

नौवे ग्रैवयक के देवों की स्थिति ज. 30 सा. उ. 31 सा.।

चार अनुत्तर विमान के देवों की स्थिति ज. 31 सा. उ. 33 सा.।

सर्वार्थसिद्ध देवों की स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट 33 सागरोपम।

2. **पृथ्वीकाय** की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त की, उ. 22000 वर्ष की।

अप्काय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त की, उ. 7000 वर्ष की।

तेउकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त की, उ. तीन अहोरात्रि।

वायुकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त की, उ. 3000 वर्ष की।

वनस्पतिकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त की, उ. 10,000 वर्ष की।

असन्नी मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ।

3. **बेइन्द्रिय** की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त,उत्कृष्ट 12 वर्ष।

तेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त,उत्कृष्ट 49 अहोरात्रि।

चौइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट छह महीने।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

जलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. एक करोड़ पूर्व।

स्थलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. 84 हजार वर्ष।

खेचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. 72 हजार वर्ष।

उरपरिसर्प की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. 53 हजार वर्ष।

भुजपरीसर्प की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. 42 हजार वर्ष।

4. **सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की स्थिति**

जलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व।

स्थलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।

खेचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. पल्योपम के असंख्यातवें भाग।

उरपरिसर्प की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. एक करोड़ पूर्व।

भुजपरिसर्प की स्थिति ज.अन्तर्मुहूर्त, उ. एक करोड़ पूर्व।

5. **गर्भज मनुष्य की स्थिति** ज. अन्तर्मुहूर्त, उ. तीन पल्योपम।

काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में- गर्भज मनुष्य की स्थिति-

पहले आरे के आरम्भ में 3 पल्योपम।

पहले उतरते और दूसरा लगते 2 पल्योपम।

दूसरा उतरते और तीसरा लगते 1 पल्योपम।

तीसरा उतरते और चौथा लगते 1 करोड़ पूर्व।

चौथा उतरते और पांचवां लगते एक सौ वर्ष झाझेरी।

पांचवां उतरते, छठा लगते 20 वर्ष।

छठा आरा उतरते 16 वर्ष।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है। तीसरे आरे तक के मनुष्यों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देशउणी होती है। शेष आरों में ज.अन्तर्मुहूर्त की। उत्सर्पिणी काल में इससे उलटी होती है।

6. **युगलिक मनुष्य की स्थिति-**

5 देवकुरु 5 उतरकुरु की स्थिति तीन पल्योपम।

5 हरिवास 5 रम्यक्वास की स्थिति दो पल्योपम।

5 हेमवत 5 हैरण्यवत की स्थिति एक पल्योपम।

56 अन्तर्द्वीप की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग। इनमें जघन्य स्थिति कुछ कम होती है और उत्कृष्ट पूर्ण होती है।

7. **सिद्ध भगवान् की स्थिति** -एक सिद्ध भगवान की अपेक्षादि अनंत और सभी सिद्ध भगवंतों की अपेक्षा अनादि अनंत।

21. समोहया असमोहया मरण द्वार

जो ईलिका गति समुद्घात करके मरे अर्थात्, कीड़ी की कतार की तरह जीव के प्रदेश अलग-अलग निकले, उसे **समोहयामरण** कहते हैं एवं जो गेंद (दड़ी) की गति

से समुद्घात करके मरे अथवा बन्दूक की गोली की तरह जीव के प्रदेश एक साथ निकलें उसे **असमोहयामरण** कहते हैं।

1. 24 दण्डक के जीव दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।
2. सिद्ध भगवान में मरण नहीं।

22. च्यवन द्वार

जीव वर्तमान भव को छोड़कर अन्य भव की पर्याय को धारण करे उसे **च्यवन** कहते हैं।

1. नारकी और भवनपति देव से लगाकर आठवें देवलोक तक एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवें। नौवे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक समय में ज. 1-2-3 उत्कृष्ट संख्यात च्यवे।
2. चार स्थावर में प्रति समय असंख्यात च्यवे।

   वनस्पतिकाय में प्रति समय अनन्त च्यवे।

   असन्नी मनुष्य में ज. 1-2-3 यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे।
3. विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे ।
4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे।
5. गर्भज मनुष्य ज. 1-2-3 उ. संख्यात च्यवे।
6. युगलिक मनुष्य ज. 1-2-3 उ.संख्यात च्यवे।
7. सिद्ध भगवान में च्यवन (मरण) नहीं।

23. गति-आगति द्वार

जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे "गति" एवं भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को **आगति** कहते हैं।

1. पहली नारकी से लगाकर 6 नारकी तक दो गतियों से आवें और दो गतियों में जावें- तिर्यंचगति और मनुष्यगति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवें और

दो दण्डक में जावें (20-21) वाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य दण्डक। सातवीं नारकी में दो गतियों से आवें- तिर्यंचगति और मनुष्यगति से और एक तिर्यंचगति में जावें। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे (20-21) वां दण्डक और एक तिर्यंच पंचेन्द्रिय (20वां दण्डक) में जावें। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक के देव, दो गतियों से आवें और दो गतियों में जावें- तिर्यंचगति और मनुष्यगति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, तिर्यंच पंचेन्द्रिय से और मनुष्य से और पांच दण्डक में जावे- पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में। तीसरे देवलोक से लगाकर आठवें देवलोक तक दो गति से आवे एवं दो गति में जावें (मनुष्य एवं तिर्यंच) एवं दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, दो दण्डक (मनुष्य तिर्यंच) पंचेन्द्रिय में जावें। नौवें देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान के देव एक मनुष्य गति से आवे और उसी गति में जावे। दण्डक की अपेक्षा एक दण्डक (21 वां) से आवे और एक दण्डक (21वां) में जावे- मनुष्य का दण्डक।

2. पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तीन गति से आवे- तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति से और दो गति में जावे- तिर्यंचगति और मनुष्यगति में। दण्डक की अपेक्षा 23 दण्डक से आवे (10 भवनपति, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी 1 वैमानिक से) और दस दण्डक में जावे- (5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य में)।

   तेउकाय और वायुकाय में दो गति से आवे (तिर्यंच और मनुष्य गति से) और एक तिर्यंचगति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक का दस दण्डक उपरोक्त) 9 दण्डक में जावे (5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय और 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय में) और असन्नी मनुष्य दो गति से आवे- तिर्यंचगति और मनुष्यगति से, और दो गति में जावे- तिर्यंचगति और मनुष्यगति में। दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवें (एक पृथ्वीकाय, 1 अप्काय, 1 वनस्पतिकाय, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य से), दस दण्डक में जावे- उपरोक्त औदारिक में।

3. तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति में जावे- तिर्यंचगति और

मनुष्यगति। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक में जावे। दस दण्डक औदारिक के हैं। असन्नी तिर्यंच में दो गति से आवे- तिर्यंचगति और मनुष्यगति से और चार गति में जावे- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे- (दस दण्डक औदारिक के) और 22 दण्डक में जावे (1 नारकी , 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 1 मनुष्य)।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय चारों गति और 24 दण्डक से आते हैं और चारों गति चौबीस दण्डक में जाते हैं।

5. गर्भज मनुष्य- आगति- चारों गति और 22 दण्डक से आते हैं (तेउकाय व वायुकाय छोड़कर)। गति 1. चारों गति और दण्डक 24 में जाते हैं और 2. सिद्ध गति में भी जाते हैं।

6. युगलिक मनुष्य - आगति 2 तिर्यंच और मनुष्यगति से आते हैं। गति - एक देवगति।

   दण्डक की अपेक्षा - तीस अकर्मभूमि की आगति- दो दण्डक से- मनुष्य और तिर्यंच से। गति दण्डक 13 में - 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में।

   छप्पन अर्न्तद्वीपों में 2 दण्डक से आवे (तिर्यंच पंचेन्द्रिय व मनुष्य) और 11 दण्डक में-10 भवनपति और 1 व्यन्तर में जावे।

7. सिद्ध भगवान् में आगति एक मनुष्यगति और एक दण्डक से और गति नहीं।

24 प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्‌भाव से जीव किसी शरीर के साथ बंधा रहे उसे **प्राण** कहते हैं। इसके दस भेद हैं -

1. नारकी और देवों में प्राण पावे दस।

2. पांच स्थावर में प्राण पावे चार (स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण कायबल प्राण, श्वासोच्छ्‌वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण) असन्नी मनुष्य में प्राण पावे कुछ कम (ऊणा) आठ- पांच इन्द्रिय के बलप्राण, श्वासोच्छ्‌वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण।

3. बेइन्द्रिय में प्राण पावे छह- रसनेन्द्रिय बलप्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण, वचन बलप्राण, काय बलप्राण, श्वासोच्छवास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण।

तेइन्द्रिय में प्राण पावे सात- घ्राणेन्द्रिय बलप्राण और छह पूर्वोक्त

चौरिन्द्रिय में प्राण पावे आठ- चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण और सात पूर्वोक्त। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव- श्रोत्रेन्द्रियबल प्राण और आठ पूर्वोक्त।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे दसों ही- मनोबल प्राण और नव पूर्वोक्त।
5. गर्भज मनुष्य युगलिक मनुष्य में प्राण पावे दस।
6. सिद्ध भगवान् में द्रव्य प्राण नहीं भाव प्राण चार हैं (ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्मशक्ति)।

25 योग द्वार

मन, वचन,काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को **योग** कहते हैं।

योग तीन- 1. मनयोग 2. वचन योग, 3 काययोग। इनमें से-

1. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग पावे एक - काययोग।
2. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे दो- वचनयोग और काययोग।
3. शेष सभी जीवों में योग पावे तीनों। मनुष्य अयोगी भी होते हैं।
4. सिद्ध भगवान में योग नहीं, अयोगी हैं।

* आत्मा के ज्ञान-दर्शन चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष- अपकर्ष अवस्था के वर्गीकरण को गुणस्थान कहते हैं।

◎ लघु दण्डक समाप्त ◎



कर्म निर्जरा का थोकड़ा

कर्म निर्जरा का थोकड़ा भगवती सूत्र शतक 16 उद्देश्य 4

बसंतपुर नामक नगरी में कोई बहुत गुणधारी मुनीराज पधारे पहले प्रहर में स्वाध्याय दूसरे प्रहर में ध्यान और तीसरे प्रहर में गोचरी पधारे गृहस्थी के घर में बखत कच्ची मिली, ठिकाणे आये मन में विचार किया, जब तक आहार-पानी न मिले तब तक चौविहार का पच्चक्खाण। स्वाध्याय, ध्यान कर फिर गोचरी के लिए पधारे।

(1) अहो भगवान्! इतने समय में अन्नग्लायक निःस्पृह भाव से जो भी शीत, चावल, अन्त, प्रान्त आदि आहार प्राप्त हो उसी से निर्वाह करने वाला तपस्वी श्रमण के जो कर्मों की निर्जरा हुई क्या उतने कर्म की निर्जरा नैरयिक जीव 1 वर्ष में अनेक वर्षों में अथवा सौ वर्षों में खपाता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(2) अहो भ.! कोई चतुर्थ भक्त (उपवास) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्म की निर्जरा करता है क्या उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में 100 वर्ष में अनेक 100 वर्ष में या 1000 वर्षों में खपाता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(3) हे भ.! कोई षष्ठ भक्त (बेला) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म क्षय करता है उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में 1000 वर्षों में, अनेक हजार वर्षों में या 1 लाख वर्षों में क्षय करता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(4) अहो भ.! कोई अष्टम्- भक्त (तेला) करने वाला श्रमण- निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में एक लाख वर्षों में, अनेक लाख वर्षों में या एक करोड़ वर्षों में नष्ट करता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(5) अहो भ.! कोई दशम् - भक्त (चौला) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में एक करोड़ वर्षों में, अनेक करोड़ वर्षों में या कोटा कोटि वर्षों में खपाता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(6) अहो भ. ! ऐसा किस कारण कहा कि अन्नग्लायक तपस्वी श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है उतने कर्मो की निर्जरा नैरयिक जीव एक वर्ष में, अनेकों वर्षो में यावत् कोटा-कोटि वर्षो में भी क्षय नहीं कर सकता ?

हे गौतम ! जैसे कोई एक वृद्ध पुरूष जर्जरित शरीर वाला, गर्मी से व्याकुल, प्यास से पीड़ित, तीन दिन का भूखा, थका हुआ वह पुरूष एक सूखी, टेढ़ी-मेढ़ी, चिकनी, गठिली लकड़ी पर कुण्ठित (बिना धार वाले) कुल्हाड़े से वह वृद्ध जोर-जोर से शब्द करता हुआ प्रहार करता है तो भी वह उस लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़े नहीं कर सकता, इसी प्रकार, हे गौतम ! नैरयिक जीवों ने अपने पाप कर्म गाढ़े किए, चिकने किए जिससे वे नैरयिक जीव, अत्यंत वेदना वेदते हुए भी महानिर्जरा और महापर्यवसान (मोक्ष रूपी फल) वाले नहीं होते।

इसके विपरीत कोई एक पुरूष तरूण, बलवान, मेधावी, निपुण, शिल्पकार, गीली, अजटिल चिकनाहट रहित अगठिली लकड़ी पर तीक्ष्ण कुल्हाड़े द्वारा प्रहार करे तो जोर-जोर से शब्द किए बिना ही आसानी से उसके टुकड़े - टुकड़े कर देता है उसी प्रकार हे गौतम ! तपस्वी श्रमण निर्ग्रन्थ के कर्म स्थुल, मन्दविपाक वाले, सत्ता रहित होने से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और वे श्रमण-निर्ग्रन्थ थोड़ी वेदना वेदते हुए भी महा निर्जरा और महा पर्यवसान (मोक्ष रूपी फल) वाले होते हैं, जैसे कोई पुरूष सूखे घास के पूले को अग्नि में डाले तो वह शीघ्र ही जल जाता है। जैसे कोई पुरूष पानी की बूंद को तपाये हुए लोहे के कहाड़ पर डाले तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थ के कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इसलिए ऐसा कहा गया है कि श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है (क्षय करता है) उतने कर्मों को नैरयिक जीव क्रोड़ा-क्रोड़ी वर्षों में भी नहीं खपाते



॥ "सेवं भंते, सेवं भंते" ॥

कथा विभाग

1. सत्यवादी राजा हरिशचंद्र

सरयू नदी के किंनारे अयोध्या नाम की सुरम्य नगरी में हरिशचंद्र नामक राजा थे। राजा न्याय नीति सम्पन्न थे उनकी कीर्ति यश पताका दिग्-दिग्न्त तक फैली हुई थी। उनका राज्य सत्य का राज्य कहलाता था। उनकी रूप गुणशील सम्पन्न तारा नाम की रानी थी.।

इंद्र द्वारा प्रशंसा -एक बार देवलोक में इंद्र द्वारा राजा हरिशचंद्र में सत्य गुण की प्रशंसा की गई। इंद्र ने कहा मृत्युलोक में अयोध्या का राजा हरिशचंद्र सत्यवादी है जैसे साक्षात् सत्य ही हरिशचंद्र के रूप में ही है। जिस प्रकार मेरु पर्वत अचल है उसी प्रकार हरिशचंद्र का सत्य भी अचल है। राजा हरिशचंद्र को सत्य से विलग करने में कोई भी समर्थ नहीं है। सत्यपालन में हरिशचंद्र अद्वितीय है। उसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है।

इंद्र द्वारा हरिशचंद्र की प्रशंसा सुनकर देव, देवी अप्सरादि तो प्रसन्न हुए किन्तु एक देव को प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। वह देव क्रोध, ईर्ष्या और द्वेष से भर गया। उसे मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशंसा सुनना अपमान लगा। तब उस देव ने हरिशचंद्र को सत्य से डिगाने के लिए कुछ अप्सराओं का सहयोग लेने की युक्ति सोची।

षड्यंत्र-अयोध्या नगरी में विश्वामित्र नाम के ऋषि का आश्रम था जो तपस्वी होने के साथ-साथ प्रचण्ड क्रोधी स्वभाव वाले थे। देव ने विश्वामित्र को राजा हरिशचंद्र पर क्रोधित करने की योजना बनाई। उसने अप्सराओं को ऋषि के आश्रम में भेजा तथा आदेश दिया विश्वामित्र के उपवन को यत्र-तत्र नष्ट करो। विश्वामित्र के क्रोध से तुम किंचित भय न करना वे जो दण्ड दे उसको सहन करती हुई राजा हरिशचंद्र की शरण लेना। वह तुम्हें दण्ड के कष्ट से मुक्त कर देगा। बस तुम्हारा इतना ही काम है।

देव का आदेश पाकर वे अप्सराएँ विश्वामित्र के आश्रम में क्रिड़ाएं करती हुई उपवन को नष्ट करने लगी। ऋषि शिष्यों ने उन्हें रोका परन्तु वे न मानी। शिष्यों का जव उन अप्सराओं पर वश न चला तो वे गुरु विश्वामित्र के पास पहुँचे तथा ऋषि से कहा- अप्सराएँ उपवन नष्ट कर रही हैं तथा हमारे मना करने पर भी अपना अधिकार वनाते

हँस-हँस कर हमारा उपहास कर रही हैं। कृपया आप ही उपवन की रक्षा कीजिए। शिष्यों की बात सुनते ही ऋषि की आंखें क्रोध से लाल हो गई। वे तुरन्त उपवन की ओर गए तथा तीव्र क्रोधपूर्वक अप्सराओं को अपने कृत्य के लिए माफी मांगने के लिए कहा। अप्सराएं बिल्कुल भी भयभीत न हुई बल्कि ऋषि का ही उपहास करने लगी। उनके इस प्रकार के व्यवहार से ऋषि का क्रोध और बढ़ गया और उन्होंने अपने तप के प्रभाव से इन अप्सराओं को लताओं के द्वारा वृक्षों से बाँध दिया।

नित्य की तरह राजा हरिशचंद्र राज्य कार्य से निवृत्त होकर घूमने निकले। तब वह देव भी एक सेवक का रूप बनाकर राजा के साथ हो गया तथा वह राजा को युक्ति पूर्वक उपवन की ओर ले गया। राजा हरिशचंद्र को आते देखकर अप्सराएं जोर-जोर से क्रन्दन करने लगी जिससे आकृष्ट होकर राजा उपवन में गए तथा अप्सराओं से बंधन का कारण जाना। राजा ने कहा- ऋषि के आश्रम में विघ्न करना उचित नहीं है तुम्हारे क्रीड़ा आमोद-प्रमोद के लिए नगर में अन्य स्थल की कमी नहीं है। फिर भी ऋषि मुनि का कार्य दण्ड देने का नहीं है दण्ड का कार्य तो मेरा है। और राजा ने अपने सत्य के प्रभाव से उन्हें मुक्त कर दिया तथा भविष्य में ऐसा कृत्य न करने का आदेश दिया। अप्सराएँ हरिशचंद्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने स्थान लौट गई।

न्यायसभा में विश्वामित्र- शिष्यों ने ऋषि मुनि को सूचना दी कि राजा हरिशचंद्र ने अप्सराओं को मुक्त कर दिया है। इतना सुनते ही ऋषि का क्रोध भड़क गया। राजा पर क्रोध करने के कारण वे रात भर सो न सके। प्रातःकाल होते ही ऋषि राजा के सम्मुख न्याय हेतु उपस्थित हो गए। राजा ऋषि के सम्मान में जैसे ही सिंहासन से उतरने लगे तो ऋषि रोषपूर्वक बोले- मैं यहाँ पूजा या सम्मान पाने नहीं आया हूँ यहाँ तुम न्यायाधीश हो, मैं न्याय कराने आया हूँ। राजा ने ऋषि को आसन दिया तथा सम्मान के साथ पूछा- कहिए महाराज आप किस बात का न्याय चाहते हैं, आदेश दीजिए।

ऋषि बोले- जिस प्रकार तुम राजा हो उसी प्रकार हम भी योगी। जैसा तुम्हारा राज्य पर अधिकार है वैसा हमारा आश्रम पर अधिकार है। जिस प्रकार राज्य में अपराध करने वाले को दण्ड राजा देता है उसी प्रकार आश्रम में अपराध करने वाले को मैं दण्ड दे सकता हूँ या नहीं? हरिशचंद्र-ऋषिवर, आश्रम राज्य सीमा के ही अन्तर्गत है। अतः वहाँ अपराध करने वाला राज्य में अपराध करने वाला होगा तथा राज्य द्वारा ही वह दण्डित

बाध्य किया किन्तु हरिशचंद्र अपने संकल्प में दृढ़ रहे। और उन्होंने राज्य का दान दे दिया। दान लेने के बाद विश्वामित्र ने कहा- दान के पश्चात दक्षिणा दिया जाना आवश्यक है। अतः दान के अनुमान में दक्षिणा भी होनी चाहिए। हरिशचंद्र-हाँ, ऋषिवर दक्षिणा भी लीजिए। प्रधान कोष से एक हजार स्वर्ण मुद्राएं ला दो।

विश्वामित्र- (क्रोधपूर्वक) राजन् तुमने राज्य का दान दिया है या मेरा उपहास कर रहे हो। जब राज्य तुम्हारा नहीं हो तो राज्य के कोषालय पर तुम्हारा अधिकार कैसे हो सकता है?

हरिशचंद्र ने तत्काल भूल स्वीकार कर क्षमा मांगी तथा विनम्रता से कहा-'' ऋषिवर एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राओं का मुझ पर आपका ऋण है। एक माह में मैं उसे अवश्य चुका दूँगा।

विश्वामित्र- जरा विचार करो राजा, यह ऋण तुम कैसे चुकाओगे ? राजन् ! अपना हठ छोड़ दो तथा अपराध स्वीकार कर लो।

हरिशचंद्र- ऋषिवर हठ मेरा नहीं आपका है। राज्य के लोभ से तथा कष्ट के भय से मैं सत्य का लोप करके झूठ बोलूँ ऐसा नहीं हो सकता।

विश्वामित्र- अच्छा तुम अपना हठ मत छोड़ो मैं अवधपति राजा के लिए आज्ञा देता हूँ कि तू पत्नी, पुत्र सहित आज ही नगर का त्याग कर दे एक भी पैसे की वस्तु तुझे ले जाने का अधिकार नहीं है तथा एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएं देने में एक माह से एक भी दिन अधिक का तुम्हें अधिकार नहीं है।

राजा हरिशचंद्र का नगर त्याग-राज्य का दान कर हरिशचंद्र महल से निकलकर रानी तारा के महल में गए। वहाँ रानी पुत्र सहित उपवन में गई हुई थी राजा भी उपवन में पहुँचे तथा राजा ने आद्योपान्त वृतान्त रानी को सुना दिया। रानी ने राजा के कार्य की बहुत प्रशंसा की तथा अपना अहोभाग्य माना। रानी को आग्रहपूर्वक राजा ने कहा- ऋण मुक्त होने तक तुम्हें तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा दूँ तुम वन के तथा प्रवास के दुःख सहन नहीं कर सकोगी। तारा ने कहा- आपकी सेवा के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती हूँ आप मुझे अपने से विलग मत कीजिए।

राजा समझ गए रानी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी। अतः उन्होंने पुत्र सहित नगर छोड़ने के लिए तैयार होने को कहा तथा एक कोड़ी भी साथ न लेने का संकेत दिया।

नगर में यह संवाद फैलते ही प्रजा में खलबली मच गई। प्रजा विश्वामित्र को बुरा कहने लगी। राजा हरिशचंद्र के बिना होने वाले दुख की कल्पनाओं से लोग सिहर उठे। वे विश्वामित्र को अपना सर्वस्व न्यौछावर करके अपने प्रिय राजा को रोकना चाहते थे।

इधर विश्वामित्र विचार कर रहे थे कि मैं क्या करने आया था और क्या हो गया? मैं राजा का मानमर्दन करने आया था किन्तु स्वयं ही राज्य के बंधन में बंध गया। हरिशचंद्र को दण्डित करने के स्थान पर स्वयं ही दण्डित हो गया। मैंने स्वयं ही राज्य की बेड़ी पहन ली। मेरी स्वतंत्रता को मैंने अपने हाथों खो दिया।

हरिशचंद्र, तारा और पुत्र रोहित राजसी वेश त्याग कर दीनवेश धारण कर राजमहल से बाहर निकले तथा विश्वामित्र को प्रणाम कर जाने की आज्ञा माँगी। फिर प्रजा को हित-शिक्षा देकर राजा-रानी नगर त्याग कर वन की ओर प्रस्थान कर गए।

काशी नगर में-जंगल की विपत्तियों का सामना करते हुए तीन दिन में राजा, रानी काशी पहुँचे। वहाँ एक धर्मशाला में छोटी सी कोठरी किराए से ली। राजा मजदूरों में शामिल हो गए तथा रानी आसपास के घरों में काम करने लगी। स्वाभिमानपूर्वक गरीबी पूर्ण रूखा-सुखा खाकर जीवन व्यतीत करने लगे।

ऋण चिन्ता-राजा-रानी मजदूरी कर जीवन-यापन कर रहे थे लेकिन विश्वामित्र का ऋण उन्हें चैन नहीं लेने देता। ऋण की चिन्ता में राजा व्यथित हो गए। अनेक उपाय करने पर भी ऋण की चिन्ता कम नहीं होती। राजा की दुःखी अवस्था रानी से देखी नहीं जाती वह राजा को धैर्य बँधाती। राजा की चिन्ता में रानी भी दुःखी हो गई। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। आखिरकार ऋण चुकाने का अंतिम दिन आ गया तभी विश्वामित्र कोठरी के द्वार पर पहुँच गए। विश्वामित्र क्रोधपूर्वक बोले कहा है हरिशचंद्र? तारा धैर्यपूर्वक बोली ऋषिवर आपका ऋण अवश्य देना है। इस समय क्षमा कीजिए और कृपा करके कुछ अवधि और दे दीजिए। विश्वामित्र- तेरा पति कहां है? उससे कह दे कि बाहर निकल वह तो अंदर छुप गया है और तुझे बाहर भेजा है। मैं उससे ऋण मांगने आया हूँ आज सूर्यास्त पूर्व मुझे ऋण चुकाए या फिर अपराध स्वीकार कर ले तो ऋण एवं राज्य दोनों छोड़ दूँगा।

तारा- महाराज हमें सत्य छोड़ने के लिए मत कहिए। हमें धन वैभव से सत्य अधिक प्रिय है कृपा करके आप तो ऋण मुक्ति का कोई उपाय बता दीजिए फिर भी हम ऋण न चुकाएं तो अवश्य अपराधी हैं।

विश्वामित्र ने कहा- मैं उपाय बताता हूँ तुम बाजार में जाकर बिको और मेरा ऋण चुकाओ।

तारा-आपने ठीक उपाय बताया महाराज यह उपाय हमारी बुद्धि में नहीं आया था नहीं तो आपको इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मैं आपको धन्यवाद देती हूँ तथा आप निश्चिंत रहिए आज ही सूर्यास्त के पूर्व हम आपका ऋण चुका देंगे।

तारा की बात सुनकर विश्वामित्र आश्चर्य चकित रह गए। मन ही मन हरिशचंद्र तारा की सत्यनिष्ठा पर धन्यवाद देने लगे।

स्व विक्रय-सत्य की रक्षा के लिए रानी तारा एक ब्राह्मण के हाथ तथा राजा हरिशचंद्र चाण्डाल के हाथ बिक गए। दोनों ने दासत्व स्वीकार कर लिया। बालक रोहित माता के साथ रहने लगा। राजा-रानी अपने दायित्व कर्त्तव्य का निर्वाह करने लगे। किन्तु ब्राह्मण पुत्र की रानी पर कुदृष्टि के कारण भोजन भी पूर्ण नहीं मिल पाता। रोहित माता के भोजन में से भोजन करता तो विचारता मेरी माता मेरे लिए भूखी रहती है। रोहित स्वयं उद्यम कर स्वतंत्र जीवन निर्वाह की बात सोचने लगा। वह जंगल जाता फल आदि लाता स्वयं खाता और माता को भी खिलाता।

इधर राजा हरिशचंद्र चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करते हुए (दासत्व का कार्य) समय व्यतीत करने लगे।

विपत्ति वज्र-राजा-रानी के जीवन का क्रम शांति से चल रहा था। किन्तु वह दुष्ट देव जिसने हरिशचंद्र को सत्य से भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी वह विश्वामित्र के क्रोध द्वारा जब सत्य से भ्रष्ट नहीं कर सका तब उसने तारा से उसका पुत्र छीनने तथा इस प्रकार सत्य भ्रष्ट का कुटिल उपाय सोचा।

रोहित नित्य की तरह वन में गया किन्तु देवमाया से उसे एक भी वृक्ष पर फल प्राप्त नहीं हुआ। भूख से विकल होकर वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया एवं परमात्मा का स्मरण करने लग गया तभी एक सुंदर आम्रफल पेड़ से नीचे गिरा वह उसने खा लिया। फल खाने

के बाद उसे विचार आया- मैंने माता को खिलाए बिना ही फल खा लिया मुझे भूख में इतना भी ध्यान नहीं रहा। इस प्रकार विचार करते-2 वह फलों के वृक्ष ढूँढने लगा तभी एक वृक्ष फलों से लदा हुआ उसकी दृष्टि में आया। वह प्रसन्नता से वृक्ष की ओर बढ़ा उसकी दृष्टि वृक्ष पर लिपटे काले भयानक सर्प पर पड़ी। रोहित ने निर्भीकता पूर्वक सर्प को हटाने का प्रयास किया किन्तु जब वह नहीं हटा तो आसपास फैली हुई डालियों को पकड़कर वह वृक्ष पर चढ़ने लगा। सर्प ने झपटकर रोहित को डस लिया। सांप के काटते ही रोहित मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। विष की भयंकरता ने रोहित के प्राण ले लिए। इधर माता रोहित का इंतजार कर रही थी।

तभी कुछ बालकों ने माता को रोहित का यह समाचार सुनाया। सुनते ही माता मूर्च्छित हो गई। होश में आने पर वह ब्राह्मण से बोली- मैं अकेली क्या करूंगी कृपया किसी को मेरे साथ भेज दीजिए। निर्दय ब्राह्मण ने कहा- तुम्हें जाना है तो जाओ और शीघ्र अंतिम संस्कार कर लौट आओ। इस प्रकार रो-रोकर प्राण दे दोगी तो मेरी पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं का क्या होगा? ब्राह्मण का उत्तर सुनकर तारा ने निराश होकर बालकों को कहा- बच्चों रोहित कहां है तुम दिखा दो। बच्चों ने जंगल में जाकर विष के प्रभाव से मृत रोहित को बता दिया।

माता ने दौड़कर रोहित के शव को उठा लिया तथा विलाप करने लगी। उसके धैर्य का बांध टूटने लगा। अब तक मैं सत्य के लिए यह दुख सहती रही लेकिन यह कष्ट मेरे लिए असह्य है। मैं भी रोहित जहाँ गया है वहाँ जाऊँगी इस प्रकार करुण क्रंदन करने लगी। किन्तु फिर सोचा मैं क्रीत दासी हूँ मैं मरने के लिए भी स्वतंत्र नहीं हूँ मेरे मालिक ने कुछ समय के लिए अवकाश दिया है। अतः पुत्र की अंतिम क्रिया के लिए किसी की सहायता का विचार करने लगी। हृदय विदारक विलाप सुनकर लोग इकट्ठे हो गए। किंतु दुष्ट देव ने माया द्वारा सबको दूर कर दिया व किसी को सहायता नहीं करने दी।

सूर्य अस्त हो चुका था। अमावस्या की अधंकारमय रात्रि थी। वन में अकेली तारा पुत्र की अंत्येष्टि की चिन्ता में बैठी थी। किसी तरह शव को कंधे पर उठाकर काशी की गलियों में जिधर से मृतकों को ले जाते देखती उस ओर चल दी लड़खड़ाती, गिरती, पड़ती, ठोकरें खाती हुई श्मशान पहुँची।

श्मशान में-अमावस्या की घोर अंधकारमय रात्रि में हरिशचंद्र चाण्डाल के दासत्व

को स्वीकार कर श्मशान की रखवाली कर रहे थे। सहसा उन्हें किसी स्त्री के रूदन की आवाज सुनाई दी। आवाज की दिशा में जा पहुँचे तथा उन्होंने पूछा देवी तुम कौन हो तथा श्मशान में अकेली क्यों रो रही हो? अपने समीप पुरुष की आवाज सुनकर तारा सहमी। तारा ने कहा तुम कौन हो? तुम यमराज हो क्या? मेरे पुत्र को लेने आए हो मैं अपने पुत्र को नहीं दूँगी।

हरिशचंद्र ने कहा मैं यमदूत नहीं मनुष्य ही हूँ तथा श्मशान की रखवाली करता हूँ। तुम्हारे पुत्र के अंतिम संस्कार में जलाई जाने वाले लकड़ी के मूल्य के लिए तुम्हें एक टका देना पड़ेगा। तब तुम्हारे पुत्र का अंतिम संस्कार होगा। रानी ने कहा- मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। कृपा कर आप इसे बिना कर लिए ही जला दीजिए?

इसी वार्तालाप के बीच मेघाच्छन्न आकाश में बिजली चमकी। बिजली के प्रकाश में दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। राजा-रानी पुत्र शोक में अधीर हो उठे तथा विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गए। जल-कण मिश्रित शीतल पवन से उनकी मूर्च्छा दूर हुई।

अंतिम कसौटी-राजा-रानी के सामने पुत्र के दाह संस्कार की समस्या खड़ी हुई। हरिशचंद्र कहने लगे- तारा मेरे स्वामी की आज्ञा है कि एक टका कर लिए बगैर मैं शव दहन के लिए लकड़ी नहीं दे सकता। अतः एक टका कर लाओ।

तारा- मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। पुत्र का दाह संस्कार आप कर दीजिए।

हरिशचंद्र ने कहा- जिस सत्य धर्म की रक्षा के लिए हमने राज्य को त्याग दिया तुम ब्राह्मण के हाथ बिकी मैंने चाण्डाल का दासत्व स्वीकार किया? क्या उस सत्य धर्म को एक टके के लिए हम जाने दें ? इसलिए बिना कर के पुत्र के अंतिम संस्कार की आशा छोड़ दो और कर चुकाने का कोई उपाय करो।

तारा ने कहा- आपका कथन यथार्थ है। आप स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन न करें। मेरे पास जो पहनने की साड़ी है। उसकी आधी साड़ी एक टके से ज्यादा की ही होगी। मैं आधी साड़ी से तन ढक लूँगी। आधी साड़ी फाड़कर जैसे ही राजा को दी वैसे ही आकाश में दिव्य प्रकाश प्रकट हो गया। देव दुदुंभी बजने लगी। देवता पुष्प वर्षा करते हुए हरिशचंद्र तारा की जयघोष करने लगे।

आकाश से पुष्प वृष्टि, प्रकाश और जयघोष सुनकर राजा-रानी चकित रह गए।

उसी समय एक देव आकाश से उतरकर आया तथा रोहित पर से अपनी माया हटाई। माया हटते ही रोहित उठ खड़ा हुआ। देव राजा-रानी से अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। राजा-रानी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा राजा ने कहा- मैं नहीं जानता आप कौन हैं तथा आपने क्या अपराध किया है? देव ने अपना परिचय देकर इंद्रसभा में हरिशचंद्र के सत्य की प्रशंसा तथा हरिशचंद्र को सत्यभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा, अप्सराओं को भेजना, विश्वामित्र को क्रोधित करना, रोहित को सर्प बनकर डसना, यह सब कार्य मैंने अपने अभिमान की पूर्ति एवं ईर्ष्यावश किया किन्तु आप सत्य से विचलित नहीं हुए। मेरा अभिमान दूर हुआ मैंने आपको बहुत कष्ट दिए आप मुझे क्षमा कर दीजिए तथा बार-बार पश्चाताप पूर्वक क्षमा मांगने लगा।

पुनः राज्य स्थापना एवं दीक्षा-इधर राजा हरिशचंद्र के चले जाने से अवध की जनता दुःखी हो गई। विश्वामित्र प्रजा के हृदय में स्थान न पा सके। विश्वामित्र ने अपने को अपने ही जाल में फंसा पाया। निराश एवं विवश हो गए उन्होंने प्रजा को आमंत्रित किया तथा अपने कृत्यों के लिए क्षमा मांगी तथा पुनः हरिशचंद्र को राजा बनाने की इच्छा व्यक्त की। हरिशचंद्र को पुनः राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करने की अभिलाषा से राजा-रानी को ढूँढने के लिए वे काशी पहुँचे।

इधर काशी की जनता को बहुत पश्चाताप हुआ हमने राजा-रानी को नहीं पहचाना ब्राह्मण परिवार, चाण्डाल परिवार सहित समस्त नगरजनों ने राजा-रानी से क्षमा मांगी तथा पश्चाताप किया। इधर विश्वामित्र भी राजा को ढूँढते हुए काशी पहुँचे। श्मशान में प्रकाश तथा हरिशचंद्र के जयघोष का कोलाहल सुनकर वे भी वहाँ पहुँचे। तथा राजा से अपने अपराध की क्षमा माँग कर पुनः राज्य भार लेने का आग्रह करने लगे। हरिशचंद्र द्वारा दान में दी हुई वस्तु लेने का इंकार करने पर इंद्रदेव आदि ने आग्रह किया। हरिशचंद्र को पुनः राज्य में स्थापित किया गया। न्याय नीति पूर्वक राज्य करते हुए निश्चित समय पर राज्यासन पर कुमार रोहित को बैठाकर राज्याभिषेक किया। राजदण्ड रोहित को सौंपकर राजा हरिशचंद्र एवं महारानी तारा ने अनेक स्त्री-पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। अनेक प्रकार के तप त्याग करते हुए मुक्तिपथ की ओर अग्रसर हुए।



महासती सुभद्रा

बसंतपुर का नगर सेठ था जिनदास। उसके एक अत्यन्त रूप लावण्यवती सुशील कन्या थी- सुभद्रा ! नगर भर में सुभद्रा के समान रूपवती और गुणवती कोई दूसरी कन्या नहीं थी।

चंपानगरी का एक धनाढ्य युवक व्यापार के लिए बसंतपुर में आया हुआ था। सुभद्रा के सौंदर्य ने उसे मोहित कर लिया। पता लगाकर वह सेठ जिनदास के घर पहुँचा। बात ही बात में सुभद्रा की चर्चा चली। युवक ने आश्चर्यपूर्वक पूछा- "तो क्या सुभद्रा अभी तक अविवाहित ही है ?"

"जी ! विवाह के लिए तो हजारों निमंत्रण आए। पर ...... प्यारी बिटिया की एक शर्त है?"

"क्या ....?"

"यही कि वह ऐसा जीवन साथी पसंद करेगी, जो उसी के समान भगवान महावीर का अनुयायी हो, धर्म का विद्वान और धर्माचरण में दृढ़ हो।"

युवक की आशाओं पर पानी गिर पड़ा। वह भी दिखने में बड़ा सुंदर था, व्यवहारकुशल था, धनाढ्य भी था, किन्तु तथागत बुद्ध का अनुयायी ! सुभद्रा के पिता जिस प्रकार अपने को 'जिनदास' कहने में गौरव अनुभव करते, उसी प्रकार यह युवक भी बुद्ध की भक्ति में विभोर होकर अपने को 'बुद्धदास' कहने में गौरवान्वित समझता था। युवक ने अपनी चिंता को भीतर ही छिपा लिया और अन्य बातें करते हुए वह उठकर अपने स्थान पर चला गया। कुछ देर वह विचारों की उधेड़ बुन में उलझ गया। एक ओर सुभद्रा के दिव्य सौन्दर्य की लालसा, दूसरी ओर धर्म परिवर्तन का प्रश्न ! बुद्धदास को रात भर नींद नहीं आई। सोचते-सोचते एक रास्ता उसे सूझ गया। " सुभद्रा को पाने के लिए कुछ दिन के लिए जैनधर्म स्वीकार कर लूं?' बुद्धदास प्रातः उठते ही जैन मुनियों के पास पहुँचा। बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ वह जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त करने लगा। वह साधुओं की संगति में बैठा ज्ञान और वैराग्य की गंभीर चर्चा करता। असली भक्ति से भी नकली भक्ति में ज्यादा आकर्षण होता है। कुछ ही दिनों में बुद्धदास सेठ जिनदास की आँखों में चढ़ गया। सुभद्रा

भी जब कभी मुनियों के पास इस सुंदर युवक को तत्व चर्चा करते देखती तो कुछ क्षण रुक कर वह भी उसमें रस लेने लगती।

बुद्धदास की नकली भक्ति ने अपना रंग जमा लिया। सेठ जिनदास ने बुद्धदास से सम्पर्क बढ़ाया और एक दिन सुभद्रा का पाणिग्रहण बुद्धदास के साथ संपन्न हो गया। सुभद्रा भी अत्यन्त प्रसन्न थी कि रूप-यौवन धन के साथ धन-संपन्न पति पाकर वह सौभाग्यवती बनी है। और बुद्धदास के तो मनमाने पासे गिर ही गए।

बुद्धदास सुभद्रा को लेकर अपने घर चंपानगरी को आया। सास-ननद आदि ने बहूरानी की बलैया ली। बिरादरी में मिठाइयां बांटी। सौम्य, सुंदर वधु को देखकर पूरा परिवार हर्षित हो गया।

ससुराल में पहले ही दिन सुभद्रा अपने नियमानुसार प्रातः उठी। एकांत में आसन पर बैठकर - णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं- जपने लगी। बुद्धदास की आँखें खुलीं, सुभद्रा अपना मंगलपाठ करती जा रही थी- ''अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जाम्मि''- बुद्धदास चौंक कर उठा। 'हैं ! यह क्या कर रही हो? देखती नहीं, चारों ओर ''बुद्धं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि' के स्वर्ण लेख लिखे हुए हैं, उन्हें नहीं पढ़ कर तुम यह क्या जपने लगी हो?''

सुभद्रा अपने मौन में थी, वह चुपचाप अपना पाठ करती रही। सास-ननद ने भी उसका यह क्रियाकांड देखा तो बस वे तो आग-आग हो उठी। सुभद्रा को बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ कि जो बुद्धदास जैन मुनियों के चरणों में बैठकर गंभीर धर्म चर्चा करता, वह तो कट्टर बौद्ध है और उसके रग-रग में जैनधर्म के प्रति घृणा भरी है। असहिष्णु तो इतना कि किसी को अपनी धर्माराधना करते नहीं देख सकता। जिसे सोना समझा वह मिट्टी निकला। जब पति की यह स्थिति है तो ननद और सास की बात ही क्या? अब पग-पग पर सुभद्रा को टोका जाने लगा। उसके धर्म और भगवान पर व्यंग्य कसे जाने लगे- ''बहुरानी ! महावीर का नाम मेरे घर में लिया तो खबरदार है। भगवान बुद्ध का स्मरण करो, वही तुम्हें सद्‌बुद्धि और सद्‌गति देंगे।''

सुभद्रा के धैर्य का प्याला भरने लगा। उसने विनयपूर्वक सास से कहा-''माताजी ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। क्योंकि मैं आपकी बहू बनकर घर में आई

हूँ। किन्तु धर्म और भगवान तो अपनी आत्मा की वस्तु है, किसी के कहने से वह मैं नहीं छोड़ सकती। और फिर मेरा धर्म आपके लिए कभी अहितकर नहीं होगा, क्या किसी के धर्म का उपहास करना और किसी को जबर्दस्ती धर्म बदलवाना मानवता है ?

सुभद्रा की बातों से सास आग-बबूला हो उठी। "अच्छा ! मुझे भी तुम मानवता की बात सिखा रही हो ! मेरी प्यार भरी बातों से नहीं, किंतु बुद्धदास की लातों और डंडों से ही तेरी बुद्धि ठिकाने लगेगी।"

सास को कलह करते देखकर सुभद्रा चुप हो गई। और मन ही मन णमोक्कारमंत्र जपने लगी। सुभद्रा के मौन जाप ने आग में घी का काम कर डाला। सास ने अच्छी तरह से बुद्धदास के कान भर दिए।

बुद्धदास ने सुभद्रा से कहा- "सुभद्रा ! मैंने कई बार तुम्हें समझा दिया है, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। एक घर में दो धर्म नहीं चल सकते। तुम अपना भला चाहती हो तो केवल भगवान बुद्ध का स्मरण करो, "अरिहंते सरणं" की जगह 'बुद्धं सरणं गच्छामि' बोला करो। इससे तुम्हारा मान-सम्मान भी बढ़ेगा, सब लोग तुम्हारा आदर करेंगे और मुझे भी तुम अधिक प्यारी लगोगी।"

सुभद्रा ने पति के चरण छूकर कहा- "पतिदेव ! घर में आप जो आज्ञा करेंगे वही काम मैं कर सकती हूँ। किन्तु धर्म के विषय में आप मुझे कुछ मत कहिए। वह मैं किसी अन्य के लिए नहीं, किन्तु अपनी आत्मा के लिए करती हूँ।

बुद्धदास- "प्रिये ! मैं कभी नहीं चाहता कि तुम मेरे घर में रहकर दूसरे के भगवान को पूजो ! तुम्हें मेरे ही भगवान की पूजा करनी होगी। वर्ना तुम्हारी जिद्द तुम्हारे ही गले की फांसी बन जाएगी ....।"

सुभद्रा इस बार कुछ दृढ़ता के साथ बोली - "पतिदेव ! यदि आपको मेरे धर्म से द्वेष है, तो फिर मुझे पाने के लिए जैन धर्म स्वीकारने का स्वांग क्यों रचा था? क्या वह छल-प्रपंच, ढोंग और धोखा सिर्फ मुझे पाने के लिए ही किया था? क्या अपने स्वार्थों के लिए मनुष्य इतना धोखा भी दे सकता है।"

बुद्धदास ने तेवर बदल कर कहा- "सुभद्रे ! तुम छोटे मुंह बड़ी बात करने लगी हो। जानती हो इस जिद्द का फल क्या होगा? अपमान ! कष्ट ! और .... ! जब तक 'बुद्धं

सरणं गच्छामि' नहीं कहोगी, मैं तुमसे नहीं बोलूंगा।"

सुभद्रा मौन होकर सुनती रही। बुद्धदास मन ही मन फुसफुसाता चला गया। सुभद्रा ने भी दृढ़ निश्चय कर लिया था, चाहे जो हो जाए, मैं धर्म को नहीं छोड़ूंगी। वह उसी प्रकार निर्भय होकर अपने व्रत-नियमों का पालन करती रही, सामायिक पाठ आदि समय पर सम्पन्न करती रही। पति, सास और घर के सभी लोग पग-पग पर सुभद्रा को तंग करने की चेष्टा करते, पर वह पत्थर बनकर सब कुछ सहती गई, इस आशा में कि समय पर सबको सद्बुद्धि आएगी और उसके संकट दूर टलेंगे।

एक दिन सुभद्रा सामायिक- पाठ आदि करके उठी ही थी कि प्रातःकाल की पुण्यवेला में एक अभिग्रहधारी मुनि को अपने घर की ओर आते देखकर पुलक उठी। उसने वन्दना कर भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मुनि ने भिक्षा पात्र को नीचे रखा और स्थिर होकर खड़े हो गए।

सुभद्रा ने भावपूर्वक शुद्ध आहार दिया और फिर हर्ष विभोर हो वन्दना करके मुनि के मुख की ओर देखा। मुनि की एक आंख पीड़ा से लाल होकर सूज रही थी, सुभद्रा देखकर समझ गई। एक फंटा मुनि की आंखों में लगा था। भक्ति के उद्रेक में सुभद्रा ने अपने आंचल के छोर से मुनि की आंख का तिनका निकाल दिया। मुनि चले गए और पवित्र हृदयवाली सुभद्रा भी आज के दिन को धन्य मानती हुई जैसे ही मुनि को वन्दना कर पीछे लौटी तो बस सास ने कुहराम मचा दिया। "कुलटा कहीं की ! मुनि से भी नहीं चूकी। हाय! इसने तो मेरे कुल पर ही कालिख पोत दी।" बुद्धदास दौड़कर आया, पास-पड़ौस के लोग भी जमा हो गए। सुभद्रा स्तंभित थी, यह क्या गजब हो गया? पवित्र एवं करुणार्द्र हृदय से मुनि की आंख का तिनका निकाल देने पर कैसे आज मेरा कुल कलंकित हो गया ....?" वह बड़ी विकट स्थिति में थी। वह मौन, खड़ी-खड़ी देखती रही। मौका पाकर बुद्धदास ने भी मन का गुबार निकाला- " कलंकिनी ! कुलटे ! उस साधु से प्रेम था तो घर के भीतर ले जाना था, या चली जाना था उसके पीछे ! क्या यही तेरे जैन धर्म ने शिक्षा दी है? मैं तेरे रूप के जाल में फंस गया। इसीलिए आज मुँह काला करना पड़ा है।"

सुभद्रा भूमि में आँखें गड़ाए मौन खड़ी रही। चारों ओर से अपशब्द की वर्षा हो रही थी। कोई उसको, कोई उसके माँ-बाप को, कोई जैन धर्म को और कोई मुनियों को कोस

रहा था। बुद्धदास बोला-पहले तो साधु से आँखे मिलाते शर्म नहीं आई ! और वह अब मुंह नीचा किए खड़ी है, जबान पर ताला लगाएगी नहीं तो क्या बोलेगी।

सहने की भी कुछ हद होती है। सुभद्रा अपनी और अपने माता-पिता की निन्दा सुनती रही, सहती रही, पर धर्म पर आक्षेप आने लगा तो उसका हृदय रो उठा। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा- ''पतिदेव ! आप सब लोग ईर्ष्या से जल रहे हैं, इसीलिए तिल का ताड़ बना रहे हैं। मैंने तो शुद्धभाव से मुनि की आँख से तिनका निकाला है, मेरे मन में कोई भी बुरी भावना नहीं थी, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। और मेरे गुरु बडे पवित्र और महान तपस्वी थे, आप लोग उन पवित्र साधुओं पर और महान जैन धर्म पर कलंक लगा रहे हैं, सत्य आखिर सत्य है'' समय आएगा, जब असत्य के ये बादल फटेंगे और सत्य का सूर्य चमक उठेगा।''

बुद्धदास आदि सुभद्रा की बात सुनकर खिसिया उठे- पाप करके अब निर्दोष बन रही है।

सुभद्रा अब मौन थी ! अपने कमरे में जाकर वह प्रभु के ध्यान में लीन हो गई। विपत्ति और संकटों का मुकाबला करने की हिम्मत उसने अपने धर्म गुरुओं से पाई थी। वह निर्भय होकर दृढ़संकल्प के साथ प्रतीक्षा करने लगी, जब तक मेरे सिर का कलंक दूर नहीं होगा।

तब तक मैं आहार पानी ग्रहण नहीं करूंगी।

इस घटना के दूसरे दिन प्रातः नगर में सहसा कोलाहल मच गया। चंपानगरी के चारों दरवाजे रात्रि में अपने आप बंद हो गए, न उन पर ताला है, न कोई सांकल ! पर खोले खुल नहीं रहे हैं।

घन की चोटें लगाते-लगाते पहलवानों के हाथों में छाले पड़ गए, सेना के विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र उन्हें हिला नहीं सके और मदमस्त हाथियों की टक्करों से भी दरवाजे चूं तक नहीं कर सके। सब लोग भयभीत थे। राजा और समस्त अधिकारी चिन्तासागर में डूबे थे। नगर पर अचानक यह क्या दैवी आपत्ति आ गई? हजारों प्रयत्न करने पर भी दरवाजे टस से मस नहीं हुए। दरवाजों पर हजारों नर-नारियों की भीड़ लगी थी। चारों और भय ! चिंता ! उद्भ्रांति छाई हुई थी। तभी राजा को सम्वोधित करती हुई एक आकाशवाणी सुनाई दी- ''राजन् ! तुम्हारे सव प्रयत्न विफल हो जाएंगे। ये दरवाजे बल और छल से नहीं

खुलेंगे, इन्हें तो कोई महासती का शील-बल ही खोल सकेगा। सुनो इस चंपानगरी में यदि कोई ऐसी सती हो, कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं में से पानी निकाले और उस पानी के छींटे इन दरवाजों पर डालें तभी ये दरवाजे खुल सकते हैं, अन्यथा नहीं।"

आकाशवाणी सुनकर राजा और प्रजा में खलबली मच गई ! सच ही यह कोई दैवी प्रकोप है। राजा ने नगर में घोषणा करवाई- "जो सती कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं से पानी निकालेगी। और नगर-द्वार खोलेगी उस महासती का समूची प्रजा उपकार मानेगी और राजा उसे अपनी धर्म-बहन बनाएंगे।

घोषणा सुनकर नगर की हजारों कुलवधुएँ इस प्रयत्न में जुट गई। किंतु कच्चे सूत से छलनी बांधकर पानी निकालना, छलनी बांधना तो असंभव सा था। दोपहर से संध्या हो गई, नगर के कुओं पर कुलनारियों का जमघट लगा था और कच्चे सूत एवं छलनियों के अंबार लगे थे, पर किसी का भी प्रत्यन सफल नहीं हो पा रहा था। संध्या होते-होते सुभद्रा ने भी उद्घोषणा सुनी। उसके मन में प्रेरणा जगी- "यह स्वर्ण अवसर आया है, जब मैं अपने शील धर्म का परिचय देकर नगर का संकट दूर करूँ और अपने धर्म पर लगे कलंक को मिटाऊँ।" सुभद्रा संकल्प करके उठी। सास के पास आई और प्रणाम करके बोली "माताजी ! आप मुझे आशीष दीजिए ! मैं अपने शील-धर्म के बल पर नगर की विपत्ति टालने का प्रयत्न करूं।"

सास कडुवी हंसी हंसती हुई बोली- "तेरे जैसी सतियाँ ही तो इस नगर का बेड़ापार लगाएंगी।

सुभद्रा ने धीरता के साथ कहा- "माताजी ! आपके मन में झूठा भ्रम हो गया है, मैं इसी को दूर करूंगी। मैं अपने व्रत में सच्ची हूँ, मेरा धर्म और देव-गुरु सच्चे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं नगर का संकट दूर करके आपके कुल की निर्मल कीर्ति में चार चांद लगाऊंगी। मुझे रोकिए मत, जाने दीजिए !"

"जा जा ! बड़ी-बड़ी राज रानियां और सेठानियां तो अपना सा मुंह लेकर आ गई, तू भी जा अपने कुल का नाम डुबोकर आ जा ! सास ने तिरस्कारपूर्वक सुभद्रा की ओर देखकर कहा।

सुभद्रा का हृदय दृढ़ विश्वास से हिलोरे ले रहा था। उसे अपने धर्म एवं नियम पर

अडिग आस्था थी। सास को प्रणाम कर अरिहंत का नाम लेकर वह चल पड़ी।

भीड़ को चीरती हुई सुभद्रा कुएँ पर पहुँची। पास-पड़ौस वाली अनेक कुलनारियाँ कनखियों से झांक कर सुभद्रा पर हंस रही थी- "यह आई है सती जैन मुनि के साथ दुराचर करने वाली नई महासती !"

सुभद्रा सब कुछ सुनती रही। कच्चा सूत लेकर चलनी को बांधा और मन में नवकार मंत्र का स्मरण किया, फिर हाथ जोड़कर संकल्प किया- "मैंने मन-वचन-कर्म से शुद्ध शील व्रत का पालन किया है तो यह छलनी पानी से भर कर बाहर आ जाओ !" बस, दृढ़ संकल्प के साथ सुभद्रा ने छलनी को कुएं में डाला और देखते ही देखते पानी से छलाछल भरी हुई बाहर आ गई। व्यंग्य और मजाक करने वाली नारियों के मुंह पर ताले लग गए। हजारों लोग आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे। तभी राजा और मंत्री दौड़कर आए- "चलिए महासती ! अपने शीलव्रत का चमत्कार दिखाइए, इस जल को नगर द्वार पर छिड़ककर नगरी का उद्धार कीजिए।"

आगे-आगे सुभद्रा थी। पीछे राजा, मंत्री और अपार नर-नारियों की उमड़ती भीड़ ! सुभद्रा पूर्व दिशा के द्वार पर पहुंची। नवकार मंत्र का स्मरण कर उच्चस्वर से बोली- "अरिहंत मेरे देव हैं, निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं, उन द्वारा प्ररुपित सत्य-अहिंसा-संयम रूप मेरा धर्म है। मैं आज तक अखण्ड रूप से अपने धर्म, नियम एवं शील का पालन करती आई हूँ। यदि मैं अपने शील में सच्ची हूँ, तो जल के छींटे लगते ही नगर के द्वार खुल जाएँ" - इन्हीं शब्दों के साथ सुभद्रा ने दरवाजों पर जल छिड़का और खड़-खड़ाते हुए दरवाजे खुल पड़े। सती सुभद्रा के जय-जयकार से धरती और आकाश गूंज उठे।

सुभद्रा ने नगर की तीन दिशाओं के द्वार पर पानी छिड़क कर उन्हें खोल दिया। किंतु एक द्वार यों ही छोड़ दिया। राजा ने उसे खोलने का आग्रह किया, तो सुभद्रा ने कहा- "महाराज ! इस द्वार को बंद ही रहने दीजिए ! भविष्य में यदि किसी सती पर विपत्ति आवे तो वह इस द्वार को खोलकर अपने शील धर्म का माहात्म्य प्रकट कर सकेगी और अपनी सच्चाई का परिचय दे पाएंगी।

राजा ने सुभद्रा को धर्म बहन बना कर बहुत सम्मान दिया। वस्त्राभूषणों से सज्जित कर राजकीय सम्मान के साथ उसे अपने घर भेजा और महासती की पदवी से विभूपित किया।

सुभद्रा का संकल्प पूर्ण हुआ। सत्य का सूर्य चमक उठा। चारों ओर सती सुभद्रा की जयध्वनियाँ गूंज रही थी। लोग चरणों में आकर क्षमा मांग रहे थे- "महासती ! हमारा कोई भी अपराध हुआ हो तो क्षमा करना !" तभी बुद्धदास और उसकी माता आए ! दोनों ही सुभद्रा के चरणों में गिरे तो सुभद्रा ने उनको रोककर स्वयं चरणों में झुक गई- "यह सब आपकी कृपा का ही फल है !"

सास और बुद्धदास की आंखों से आंसू बह रहे थे। "देवी ! तुम महान सती हो ! हमने तुम्हें और तुम्हारे धर्म को ईर्ष्यावश कलंकित किया है, हमें माफ कर दो !

सुभद्रा ने परिवार सहित सैकड़ों लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी।

जिसे सुनकर कई लोगों ने जिनधर्म को स्वीकार किया।



महावीर के प्रथम गणधर - 'इन्द्रभूति गौतम'

इन्द्रभूति भगवान महावीर के प्रथम शिष्य तो नहीं पर प्रथम सुशिष्य थे। प्रथम सुशिष्य इसलिए कि गौतम से पूर्व गौशालक प्रभु का शिष्य बना था पर वह कुशिष्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। भगवान का ही अपकार करने वाला हुआ।

इन्द्रभूति जब प्रभु के सम्मुख आए थे उस समय दीक्षा के भाव से नहीं आए थे। वे तो आए थे प्रभु के लिए मन में शत्रुभाव लेकर, करना चाहते थे शास्त्रार्थ, देखना चाहते थे प्रभु को अपने सम्मुख परास्त होते, पर हो गया बिलकुल विपरीत अर्थात् प्रभु के अतिशय से प्रभावित गौतम अपने शिष्य समुदाय सहित प्रभु के पावन चरणों में वहीं समर्पित हो गए।

अद्भूत, अलौकिक, विराट व्यक्तित्व वाले महापुरुष इन्द्रभूति 'गौतम' के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देना जिह्वा या शब्दों के वश की बात नहीं है। गौतम गौत्रिय ब्राह्मण-कुल में जन्म के कारण ये 'गौतम' कहलाए। ये वेद-विद्या के एक प्रख्यात पारंगत विद्वान-आचार्य थे। पाँच सौ वेदपाठी पंडित-पुत्र ब्राह्मण उनसे वेदों का गुढ़ ज्ञान प्राप्त करने हेतु उनके पास नियमित अध्ययन करते थे।

यज्ञ का आयोजन - जिन दिनों श्रमण भगवान महावीर को कैवल्य की प्राप्ति हुई, उन्हीं दिनों अपापा नगर के निवासी सोमिल नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण ने अपने यहाँ एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उस समय तक कर्मकांड एवं यज्ञादि अनुष्ठान में अतिनिष्णात एवं वेद-विद्या में पारंगत होने के कारण इन्द्रभूति की यशोगाथा दशों दिशाओं में फैल चुकी थी। वादि के वाद-मान-मर्दन में सब ब्राह्मण समुदाय में उनके तुल्य कोई अन्य नहीं था।

सोमिल ने अपने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु ऐसे महान् पंडित इन्द्रभूति को बुलाया और साथ ही अग्निभूति, वायुभूति (दोनों इन्द्रभूति के भ्राता) व्यक्त, सुधर्मा, मंडित, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्रात, मेतार्य एवं प्रभास नाम के दस अन्य महादिग्गज पंडितों को भी यज्ञ में बुलाया गया। सुविशाल यज्ञ के आयोजन से अपार जन-समूह अपापा नगर की ओर उमड़ पड़ा।

इन्द्रादि के विमानों का आगमन - इन्द्रभूति के निर्देशन में यज्ञ प्रारम्भ हुआ। सहसा आकाशमंडल में सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश एक साथ भर गया। यज्ञ-मंडप में उपस्थित सभी जन गगनमंडल की ओर निहारने लगे। गगन देवों के देदीप्यमान विमान से जगमगा गया था। सभी लोग सोमिल के भाग्य और गौतम के अनुष्ठान की प्रशंसा करने लगे - "कैसा विद्वान पंडित है ? कितनी शक्ति है उसके मंत्रोच्चारण एवं अनुष्ठानिक क्रियाओं में ! देवलोक के इन्द्रादि सभी देवों को साक्षात यज्ञ में आना पड़ा। आज तक जो नहीं देखा, वह आज देख लिया।

प्रशंसा अहंकार को जगाती है। गौतम ने भी जन-जन के मुखोच्चारित प्रशंसा-शब्दों को सुना। सोचा - "यह हुआ मेरे ज्ञान, मेरी विद्वत्ता, मेरे पांडित्य का साक्षात् चमत्कार। मैं जानता था, मैं सर्वज्ञ हूँ, अब सभी जान गए। सबको मानना पड़ेगा कि मेरे जैसा ज्ञानी दूसरा कोई नहीं है।"

वह सोमिल से बोला - "हमने तुम्हारे यज्ञ का अनुष्ठान कर तुम्हारे भाग्य को जगा दिया है। हमारे ज्ञानबल से देवतादि भी तुम्हारे यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करने साक्षात् सशरीर आ रहे हैं।"

विमान निकट, निकटतर, निकटतम आए और अगले ही कुछ क्षणों में फर्राटे भरते हुए यज्ञ-स्थल के ऊपर होते हुए आगे चले गए। सबने देखा यह, सभी के स्वर मंद पड़ गए, मंत्रोच्चार में अब वह उत्साह तेज नहीं रह गया। सभी हताश और निराश हो गए।

देव विमान कहीं और ! भ्रांति मिटी तो अचरज बढ़ा - कुछ ही क्षणों पश्चात् देव-विमान किसी निकटस्थ स्थान पर उतरते दिखाई पड़े। इन्द्रभूति अचरज में पड़ गए। देव-विमान यज्ञ स्थल पर क्यों नहीं उतरे ? आगे क्यों चले गए ? क्या वे मार्ग भूल गए ? पर गए तो इधर से ही थे। क्या उनकी स्मरण शक्ति चूक गई है ?

इन्द्रभूति को आश्चर्य तो था ही अब आवेश भी आ गया। उसने अपने विद्यार्थी शिष्यों को कहा - "तुममें से कुछ छात्र जाओ और छानबीन कर बताओ कि बात क्या है ?

जो देखा, अविस्मरणीय देखा - शिक्षार्थी वहाँ गए तो वहाँ जो कुछ आश्चर्यजनक देखा उसे अपने गुरुदेव इन्द्रभूति को सुनाते हुए बोले - "वहाँ सर्वज्ञ श्रमण

भगवान महावीर पधारे हुए हैं । उन्हें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई है। देवों द्वारा उन्हीं के समवसरण की रचना की गई है। समस्त देवगण वहीं पधारे हैं।''

कौन है यह महावीर ? - यह सुनकर इन्द्रभूति का तेज अचानक मंद पड़ गया। अन्दर का अहंकार भी कुछ नीचे उतर गया पर आवेशभाव क्रोध में बदलने लगा। मन में सोचा - ''सर्वज्ञ तो मैं हूँ, यह सर्वज्ञ कहाँ से आ गया ? लगता है कोई बहुत बड़ा मायावी, ऐन्द्रजालिक (इन्द्रजालिया) है जिसने देवों तक को छल लिया है। मैं अभी जाकर देवों के भ्रम दूर करता हूँ। ऐसे-ऐसे जटिल प्रश्नों की झड़ी लगाता हूँ कि उसकी सर्वज्ञता का आवरण छन्न से टूटकर बिखर जाएगा।

चले इन्द्रभूति, प्रभु महावीर के समवसरण की ओर। अपने पांडित्य के अनुरूप पीतवस्त्र, यज्ञोपवीत आदि उन्होंने धारण कर रखे थे। पाँच सौ शिष्यों का समुदाय उनके पीछे था। उनका कमंडल किसी एक शिष्य के हाथ में था तो एक अन्य शिष्य छत्र लिए हुए उनके साथ चल रहा था। वे सभी शिष्य इन्द्रभूति की जयकार करते हुए चल रहे थे।

ये महावीर ही अंतिम तीर्थंकर हैं ! - चलते हुए जब वे समवशरण के निकट पहुँचे तो दंग रह गए। अष्ट महाप्रतिहार्य और अलौकिक ऐश्वर्य, महावीर और इस समवसरण ने उस पंडित को एक पल के लिये मूढ़ बना दिया। वे सीढ़ियों के निकट ही अचल खड़े हो अपलक प्रभु को निहारने लगे। सोचा - 'यह मैं कहाँ आ गया ? यह महावीर हैं या ब्रह्मा ? पर ब्रह्मा तो वृद्ध हैं तो क्या विष्णु हैं ? पर विष्णु तो श्याम रंग के हैं और ये तप्त स्वर्ण जैसे स्वर्णिम रंग के। महेश्वर ये हो नहीं सकते क्योंकि वे तो संहारक हैं और इनका चेहरा तो अमृत रस का झरना है। सूर्य के समान तेजस्वी हैं पर सूर्य नहीं हैं क्योंकि सूर्य तो जला देता है और ये तो शांत हैं। चन्द्र भी ये नहीं क्योंकि चन्द्र तो सकलंक है और ये निष्कलंक हैं। कामदेव अशरीरी हैं अतः कामदेव भी ये हो नहीं सकते, तो क्या ये ही सर्वगुण सम्पन्न और सभी दोषों से रहित अंतिम तीर्थंकर हैं ? निश्चित ही ऐसा ही है तो फिर मेरा यहाँ आना निष्फल हो जाएगा। अब बिना कुछ बोले वापस जाता हूँ तो मेरा तो सारा अर्जित-यश मिट्टी में मिल जाएगा। लोग मुझे 'पलायन करने वाला' कहेंगे। बड़ी भूल कर दी मैंने यहाँ आकर। लौटकर जा नहीं सकता और इन्हें परास्त कर नहीं सकता। अब तो कोई चमत्कार ही मेरे यश, मेरे मान-सम्मान की

रक्षा कर सकता है।'

सागयं सु आगतं – इधर गौतम की यह विचारधारा चल ही रही थी कि तभी प्रभु ने कहा - 'हे इन्द्रभूति गौतम ! "**सागयं सु आगतं**"। अर्थात् हे इन्द्रभूति गौतम ! 'स्व-पर' कल्याणकारी होने से तुम्हारा आगमन अच्छा है लाभकारी है। प्रभु तो सर्वज्ञ थे, जानते थे कि ये दीक्षा लेकर अपनी आत्मा के साथ ही जन-जन के लिए कल्याण का पथ भी प्रशस्त करेंगे।

इन्द्रभूति ने सोचा - 'आश्चर्य है ! ये मेरा नाम भी जानते हैं।' पर कुछ ही पलों बाद विचार आया - 'मेरे नाम को कौन नहीं जानता। मेरे पांडित्य के कारण सारी दुनिया मुझे जानती है।' उनके अन्दर के अहंभाव ने पुनः सिर उठा लिया था। यह भी मोहकर्म के उदय का प्रताप है।

मन की शंका का समाधन – तभी प्रभु बोले - "हे गौतम ! क्या तुम्हारे मन में यह शंका है कि आत्मा का अस्तित्व है या नहीं ? जब वह घट - पट आदि की तरह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता तो उसका अस्तित्व नहीं है, ऐसा ही मानना चाहिए। क्या यही बात तुम्हारे मन में है ?"

गौतम भाव-विभोर हो गए। "अरे कितना समय हो गया था इस पर चिन्तन करते-करते पर आज तक मैंने मन में उठ रही इस शंका को प्रकट नहीं किया था, किसी को बताया नहीं था, फिर भी प्रभु ने उसे जान लिया।" गौतम मान गए कि महावीर निश्चय ही सर्वज्ञ हैं।

मैं की अनुभूति ही आत्मा है – प्रभु इस पर बोले - "इन्द्रभूते ! तुम्हारे अंतर में जीव के अस्तित्व और अनास्तित्व की जो ऊहापोह है, उसी से सिद्ध होता है कि जीव है। तुम्हारे मन में यह जो संशय उठा उसका मूल कारण यह है कि तुमने वेद की ऋचाओं के वास्तविक अर्थ को हृदयंगम नहीं किया। वहाँ आया है -

न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतप्रियाप्रिये न स्पृशतः।'

छान्दोग्योपनिषद्, 445

जहाँ से शंका उत्पन्न हुई वह कौन है ? वही तो आत्मा है। तुम जब कहते हो - मैं आया, मैं गया, मैं प्रसन्न हूँ, मैं यह करना चाहता हूँ, तो इन सब में, यह 'मैं' कौन है?

'अहं ब्रह्मोस्मि ! यही जो 'मैं' की अनुभूति है। वही मैं हूं, वही आत्मा है।

गौतम प्रभु चरणों में समर्पित - शंका का समाधान हो गया। आए थे इन्द्रभूति वहाँ प्रभु को परास्त करने पर स्वयं को समर्पित कर बैठे प्रभु के चरणों में। आए थे शत्रुभाव लेकर पर नतमस्तक हो गए। मिथ्यात्व की कारा को तोड़कर सम्यग्दर्शन के सुखासन पर आसीन हो गये। तन और मन से पंचांग नमाकर बोले - "प्रभु ! आप सर्वज्ञ हैं, आपने मेरे मन की गहराई में छिपी शंकाओं का समाधान कर मेरे मन को संतुष्टि प्रदान की है। भगवन् ! मैं अब इन पावन चरणों की शरण को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी जाना नहीं चाहता। आपने मेरे अन्तर के ज्ञान-चक्षुओं को पूर्णतः खोल दिया है अतः मेरा यह जीवन आपको समर्पित है। मैं आप ही की तरह का साधक जीवन आपके सान्निध्य में बिताना चाहता हूँ।"

अहासुहं देवाणुप्पिए - "हे गौतम ! तुम्हें जैसा सुख उपजे वैसा करो, धर्मकार्य में क्षण मात्र का भी विलम्ब मत करो।"

पाँच सौ शिष्य भी प्रभु-चरणों में समर्पित - गौतम के साथ थे उनके पाँच सौ विद्यार्थी-शिष्य। वे अपने शिष्यों की ओर उन्मुख होकर बोले - "मुझे तो आज मेरे सच्चे गुरुवर की प्राप्ति हो गई है। आज से मेरा समस्त जीवन इन्हीं की चरण-शरण में अर्पित रहेगा। आप सभी एक लम्बे समय तक मेरे पास रहकर वेद-वेदांत का अध्ययन करते रहे। आज से आप लोग किसी अन्य के पास जाकर विद्याध्ययन करना चाहें तो जा सकते हैं, जिसकी जैसी भावना हो वह वैसा करे।"

शिष्य भी गुरु की तरह समर्पित भाव रखने वाले थे। बोले - "गुरुवर ! जो आपके गुरु, आज से वही हमारे भी गुरु। आपकी इस साधना-यात्रा में हम भी आपके साथ ही रहेंगे, आपकी सेवा-सुश्रूषा करते हुए महावीर के इसी साधना पथ पर चलेंगे।"

इन्द्रभूति गौतम अपने पांच सौ शिष्यों के साथ प्रभु चरणों में समर्पित हो गये, उन्होंने जगत् के जीवों के कल्याण हेतू प्रभु से अनेकों प्रश्नों का समाधान किया, वे आज भी आंशिक रूप से उपलब्ध हैं वे गणधर वने और प्रभु निर्वाण के पश्चात केवलज्ञान को प्राप्त कर सिद्ध-वुद्ध-मुक्त हुए।



लघु-साधु वन्दना

साधु जी ने वंदना नित नित कीजे प्रातः उगंते सूर रे प्राणी।
नीच गति मां ते नहीं जावे, पावे ऋद्धि भरपूर रे प्राणी ।साधु ।।1 ।।

मोटा ते पंच महाव्रत पाले, छह कायारा प्रतिपाल रे प्राणी।
भ्रमर भिक्षा मुनि सूझती लेवे, दोष बियालीस टाल रे प्राणी ।साधु ।।2 ।।

ऋद्धि सम्पदा मुनि कारमी जाणी, दीधी संसार ने पूठ रे प्राणी।
एवा पुरुषां री सेवा करता, आठ करम जाय टूट रे प्राणी ।साधु ।।3 ।।

एक एक मुनिवर रसना त्यागी, एक एक ज्ञान भण्डार रे प्राणी।
एक एक मुनिवर वैयावच वैरागी, जेना गुणानो नावे पार रे प्राणी ।साधु ।।4।।

गुण सत्तावीस करीने दीपे, जीत्या परीसह बावीस रे प्राणी।
बावन तो अनाचार जो टाले, तेने नमावुं मारूं शीश रे प्राणी ।साधु ।।5।।

जहाज समान ते संत मुनीश्वर, भव्य जीव बैठे आय रे प्राणी।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे देवे मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी ।साधु ।।6।।

इण चरणे जीव साता पावे, पावे ते लीलविलास रे प्राणी।
जन्म जरा ने मरण मिटावे, नावे फरी गर्भावास रे प्राणी ।साधु ।।7।।

एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी।
नरक निगोद माँ ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी ।साधु ।।8 ।।

प्रातः उठी ने उत्तम प्राणी, सुणे साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी।
एहवा पुरुषां री सेवा करतां, पावे अमर विमान रे प्राणी ।साधु ।।9।।

संवत अठार ने वर्ष अड़तीसे, बूसी गाँव चौमास रे प्राणी।
मुनि आसकरणजी इण पर जपे, हूं तो उत्तम साधाँ रो दास रे प्राणी ।साधु ।।10।।



मन मंदिर

तर्ज (खड़ी नीम के नीचे...)

मन मंदिर को स्वच्छ बनाकर, ध्यान धरो भगवान का
भक्ति की सौरभ महकाकर, दीप जलाओ ज्ञान का।टेर।

राग द्वेष का बीज जलाकर, जन्म मरण मिटा दिया।
आत्मा का सब कल्मष धोकर, भव अज्ञान हटा दिया।
उस चिन्मय का ध्यान धरे, हम पाएँ पथ कल्याण का ॥1॥

सत्य शील संतोष सरलता, सत् संगति के फूल से
प्रभु की भक्ति कर लो भाई, अपना आपा भूल के
तू मैं का यह भेद मिटाकर, स्वाद जरा ले ध्यान का ॥2॥

क्रोध, मान, माया, ममता की, भरी हृदय में गन्दगी
दुर्व्यसनों की दुर्गन्धि से, बिगड़ी तेरी जिन्दगी
स्वच्छ बना ले इसको अब तू, मौका है उत्थान का ॥3॥

जैसी जिनकी रही भावना, वैसा ही फल पाता है
दृष्टि समसृष्टि में देखो, रूप वही मिल जाता है
सत् चिंतन है पथ प्रभुवर का, दुश्चिन्तन शैतान का ॥4॥

मत भक्ति का ढोंग रचाओ, अगर हृदय में खोट है
नहीं चलेगा कहीं जगत में, तेरा नकली नोट है
छत्र खुलेगा समभावों से, द्वार सुखद निर्वाण का ॥5॥



शान्ति मन्त्र

महामंत्र है यह जपेंगे जपेंगे
सदानंद शांतिः सदानंद शांतिः ॥धु ॥
जो सोमल ने डाले धधकते अंगारे।
सहे कृष्ण बान्धवं ने किसके सहारे ?
यही मन्त्र नस-नस में उसके भरा था -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥1 ॥
सुदर्शन पे दौड़ा था अर्जुन माली।
कहो कैसे उसका गया वार खाली ?
यही मन्त्र जीवन में उसके समाया-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥2 ॥
सुना पाँच सौ थे जो खन्दक के चेले।
गये कैसे कोल्हू में वे हाय पेले ॥
यही मन्त्र रग-रग में उनके रमा था-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥3 ॥
सुना सन्त स्कन्दक की चमड़ी उतारी।
कहो कैसे मन में परम शान्ति धारी ॥
इसी मन्त्र का अर्थ उसने विचारा-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥4 ॥
सुना मेघरथ ने कबूतर के कारण।
दिया माँस अपना किया दुःख निवारण ॥
इसी मन्त्र से तो बना शांति स्वामी-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥5 ॥
दिया नागश्री ने कटुक शाक जिसको।
उसी धर्मरुचि ने पिया कैसे विष को ॥
यही मन्त्र तो मन में उसके बसा था -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥6 ॥
सुना है कुंवर मेघ हाथी के भव में।
खड़ा तीन पग से क्यों जंगल के दव में ॥
इसी मन्त्र से था वो पशु भी प्रभावित-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥7 ॥

जो मैतार्य के सिर पे चमड़ा लपेटा।
लगी धूप सिकूड़ा सकल दुःख मेटा॥
इसी मन्त्र का ध्यान उसने लगाया -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥8॥

जो अर्हन्नकादिक अनेकों उपासक।
रहे कैसे संकट में आत्मानुशासक ?
अचल दिल में यह मन्त्र सब के जमा था-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥9॥

जो सीता शिवा अंजना आदि माता।
कहो कैसे सह ली भयंकर असाता॥
तपस्या का अवलम्बन यह मन्त्र ही था -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥10॥

असुर मेघमाली के उपसर्ग भारी।
रहे कैसे पारस प्रभु ध्यान धारी॥
इसी मन्त्र का आपको भी सहारा -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥11॥

महावीर को देव संगम ने ऐसे।
दिये कष्ट कितने सहे हाय ! कैसे ?
यही मन्त्र जपते थे शासन के स्वामी -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥12॥

जो सज्जन के दुर्जन सदा प्राण लेते।
कहो कैसे हँस के वे बलिदान देते॥
धरम जाति भक्तों को यह मन्त्र प्यारा -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥13॥

परम शांति को पूर्ण पुरुषार्थ मानें।
इसे निर्बलों का न पाखण्ड जानें॥
अरे सूर्य चंदा, यही शुद्ध साहस-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥

महामन्त्र है यह जपेंगे जपेंगे।
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः ॥

चीड़ी चोंच भर ले गई, घटियो न नदिया नीर।
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर॥

सामान्य ज्ञान विभाग

ज्ञान-फुलवारी

1.	तृष्णाजयी बन तिरा कौन ?	कपिल केवली
2.	मानकर मुण्डित कौन हुआ ?	दशार्णभद्र राजा
3.	क्रोध से दुर्गति किसने पायी ?	चण्डकौशिक का जीव
4.	विषय वशवर्तीबन मृत्यु किसने पाई ?	मणिरथ राजा
5.	माया करके मंजिल से कौन गिरा ?	आषाढ़ भूति मुनि
6.	तप करके भटका कौन ?	कुंडरिक मुनि
7.	दान देकर संसार किसने बढ़ाया ?	नागश्री ब्राह्मणी
8.	ममता से मोक्ष किसका रुका ?	स्कन्धक आचार्य
9.	शील सुशोभित कौन हुआ ?	सुदर्शन श्रावक
10.	सुपात्रदान को निष्फल किसने किया ?	पूरण सेठ
11.	रूप देख रंज किसने किया ?	सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप पर ब्राह्मण रूप देवता ने
12.	वाणी से निर्मल कौन हुआ ?	रोहिणेय चोर
13.	सोये को किसने जगाया ?	ब्राह्मी सुंदरी
14.	अबोध से बोध किसने पाया ?	करकंडु
15.	निशस्त्र युद्ध किसने किया ?	प्रसन्नचंद्र राजर्षि
16.	व्यथा में स्वरूप किसने जाना ?	रत्नेश मुनि (अनाथी मुनि)
17.	रागी को त्यागी किसने बनाया ?	स्थूलीभद्र ने कोसा वेश्या को

18.	तिरस्कार से सत्कार किसने पाया ?	सति सुभद्रा
19.	उपकार के बदले अपकार किसने किया ?	गोशालक
20.	पुण्य से पाप किसने कमाया ?	नंदमणियार
21.	जहर को अमृत बना, ईश्वर कौन वने ?	प्रभु महावीर
22.	जोगी बन, जान किसने गंवायी ?	रावण
23.	गुफाओं में ज्ञान किसने पाया ?	मान तुंगाचार्य
24.	भूले को सत्पथ किसने दर्शाया ?	सति राजमति
25.	शिकारी से अविकारी कौन बना ?	संयति राजा
26.	श्मशान में भी सत्य की सुरक्षा किसने की ?	राजा हरिशचंद्र
27.	पगड़ी बंधवाकर पार कौन हुए ?	गज सुकुमाल मुनि
28.	मार खाकर मोक्ष कौन गया ?	मेतार्य मुनि
29.	प्रण पाल कर प्राण रक्षा किसने की ?	मेघरथ राजा
30.	मान छोड़ के ज्ञान किसने पाया ?	वाहुवली राजा
31.	क्रीड़ा करते-2 ज्ञान किसने पाया ?	ईलायची कुमार
32.	भोगी देखकर भोगी कौन वना ?	कुण्डरिक
33.	कलंक धोकर कल्याण किसने किया ?	सति चंदनबालाजी
34.	पापी से पुनीत कौन वना ?	चिलाती पुत्र
35.	शोरगुल सुनकर सोया कौन जगा ?	नमि राजर्षि
36.	अहम्‌भाव त्याग समभावी कौन वना ?	गणिवर गौतम
37.	ठोकर खाकर ठाकुर कौन वना ?	मेघ मुनि

卐

कालचक्र : एक अनुशीलन

मनुष्य लोक प्रसिद्ध दिन-रात, पक्ष मास आदि स्थूल काल-विभाग सूर्य चंद्रादि ज्योतिष्कों की गति पर आधारित है। स्थान विशेष में सूर्य के प्रथम दर्शन से लेकर उस स्थान विशेष में सूर्य का जो अदर्शन होता है, उस उदय-अस्त के बीच सूर्य की गतिक्रिया से ही दिन का व्यवहार होता है।

इस प्रकार सूर्य के उदय अस्त की गतिक्रिया से दिवस रात्रि का व्यवहार होता है। दिन और रात का तीसवाँ भाग मुहूर्त कहलाता है। पन्द्रह दिन-रात का पक्ष होता है। दो पक्ष का मास होता है। दो मास की ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का अयन होता है, दो अयन का वर्ष, पाँच वर्ष का युग होता है। इस प्रकार का लौकिक काल विभाग सूर्य की गतिक्रिया से किया जाता है। जो क्रिया चालू है वह वर्तमान काल, जो होने वाली है वह अनागत काल और जो हो चुकी है वह अतीत काल है। जो काल गणना में आ सकता है वह संख्येय है, जो गणना में न आकर केवल उपमान से जाना जाता है। वह असंख्येय है, जैसे पल्योपम, सागरोपम आदि। जिसका अंत नहीं है, वह अनन्त है।

समय, आवलिका, आदि काल के सूक्ष्म विभाग हैं। काल का सबसे छोटा अंश जिसका फिर अंश न हो सके वह समय कहा जाता है। असंख्यात समयों की एक आवलिका होतीं है। एक करोड़, सड़सठ लाख, सितत्तर हजार दो सौ सोलह (1, 67, 77, 216) आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है। एक मुर्हूत में दो घटिकाएं होती हैं। 24 मिनिट की एक घड़ी और 48 मिनिट का एक मुहूर्त होता है। दो समय से लेकर एक समय कम मुहूर्त काल को अंतर्मुहूर्त कहते हैं।

काल चक्र और उसका प्रभाव

लोक-स्थिति के प्रभाव से भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल का अलग-अलग प्रभाव होता है। मुख्य रूप से काल के दो विभाग हैं- (1) अवसर्पिणी काल और (2) उत्सर्पिणी काल।

1. अवसर्पिणी काल- जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जाए, आयु और अवगाहना घटती जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम का ह्रास होता जाए उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। इस काल में पुद्गलों के

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श हीन होते जाते हैं और अशुभ भाव बढ़ते जाते हैं।

2. उत्सर्पिणी काल- जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाए, आयु और अवगाहना बढ़ती जाए तथा उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम की वृद्धि होती जाय वह उत्सर्पिणी काल कहलाता है। जीवों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। अवसर्पिणी काल की समाप्ति पर उत्सर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल की समाप्ति पर अवसर्पिणी काल आता है। अनादि काल से यह क्रम चलता आ रहा है और अनन्त अनागत काल तक यही क्रम चलता रहेगा।

छः आरों का वर्णन

उत्सर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है और अवसर्पिणी काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। दोनों मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक काल चक्र होता है। काल चक्र के कुल बारह आरक हैं। प्रत्येक काल के छह आरे हैं। अवसर्पिणी काल के छह आरों का विवरण यहाँ दिया जाता है।

अवसर्पिणी काल

पहला आरा - सुखमा - सुखम

चार कोडाकोडी सामरोपम का 'सुखमा-सुखम' (एकान्त सुख) नाम का पहला आरा होता है। इस आरे में मनुष्य का शरीर तीन कोस का, आयु तीन पल्योपम की होती है। उतरते आरे में दो कोस का शरीर, दो पल्योपम का आयुप होता है। मनुष्य के शरीर में 256 पृष्ठ करंड (पसली व हड्डी) और उतरते आरे के वक्त 128 पसलियां होती हैं। वज्रऋषभ नाराच का संहनन, समचतुरस्र संस्थान होता है। दम्पत्ति खूबसूरत, सरलस्वभावी, उत्तम लक्षण से युक्त होते हैं। तीन दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। प्रकृति प्रदत्त कल्प वृक्षों के द्वारा ही जीवन निर्वाह होता है। वे अपने शरीर परिमाण में कल्पवृक्ष के फल आदि का आहार करते हैं (पहले आरे में तुवर के दाने के बराबर आहार करते हैं। दूसरे आरे में बेर के बराबर, तीसरे में आंवले के बराबर आहार करते हैं। ऐसा ग्रन्थकार बताते हैं। मनोवांछित पदार्थों की पूर्ति करने वाले वृक्ष को 'कल्पवृक्ष' कहते हैं।

उनके दस भेद हैं :-

(1)	मतंगा	-	शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले।
(2)	भृतंगा	-	पात्र आदि देने वाले।
(3)	त्रुटितांगा	-	वाद्यंत्र देने वाले।
(4)	दीपांगा	-	दीपक का काम देने वाले।
(5)	ज्योतिरिंगा	-	सूर्य के समान प्रकाश देने वाले। अग्नि को भी ज्योति कहते हैं। अतः अग्नि का भी काम देने वाले।
(6)	चित्रांगा	-	विविध विभिन्न प्रकार के फूल देने वाले।
(7)	चित्ररसा	-	विविध विभिन्न प्रकार का भोजन देने वाले।
(8)	मण्यंगा	-	आभूषण देने वाले।
(9)	गेहागार	-	मकान के आकार में परिणत होने वाले (42 मंजिल के) आवास-मकान रूप कल्पवृक्ष भी होते हैं।
(10)	अणियणा	-	वस्त्रादि देने वाले।

मिट्टी का स्वाद गुड़, खांड, शक्कर से भी मीठा होता है।

(1) प्रथम आरे के स्त्री-पुरुष का आयुष छः महीना शेष रह जाता है, उस समय परभव का आयुष बांधते हैं और षड्मास आयु शेष रहने पर ही युगलिनी एक पुत्र-पुत्री के जोड़े को जन्म देती हैं। उनपचास दिन तक उनका लालन-पालन करने के बाद वें समझदार और स्वावलंबी हो जाते हैं फिर वे सुखोपभोगानुभव करते हुए विचरते हैं। इनके माता-पिता क्रम से छींक और उबासी आने से मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्रअधिष्ठित देव उन युगल के मृतक शरीर को क्षीर-समुद्र में प्रक्षेप कर मृत्यु संस्कार करते हैं। इस आरे में वैर, शोक, ईर्ष्या, जरा रोग आदि कुछ भी नहीं होता। ये सुख इन्हें पूर्व भव के दान, पुण्यादि सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं।

दूसरा आरा-सुखम

प्रथम आरे की मर्यादा समाप्ति होते ही तीन कोडा कोडी सागरोपम का सुखमा नामक दूसरा आरा आरम्भ होता है। इस समय पहले से वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों की उत्तमत्ता में अनन्त गुण हीनता हो जाती है। इस आरे में मनुष्य का देहमान दो कोस का

व आयुष दो पल्योपम का होता है। उतरते आरे में एक कोस का शरीर व एक पल्योपम का आयुष रह जाता है। पृष्ठ करंड (पसलियां) 128, उतरते 64 रह जाती हैं। मनुष्यों में वज्र ऋषभ नाराच संहनन व समचतुरस्र संस्थान रह जाता है। दो दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद शर्करा जैसा रह जाता है दस प्रकार के कल्पवृक्ष से जीवन निर्वाह करते हैं। मृत्यु के जब छः महिने बाकी रह जाते हैं, तब युगलिनी एक पुत्र-पुत्री का प्रसव करती हैं। चौसठ दिन के लालन-पालन के पश्चात वे दम्पत्ति वन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। उनके माता-पिता क्रमशः छींक उबासी आने पर मर कर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव इनके मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। इस आरे में वैर, ईर्ष्या, शोक, जरा रोग आदि नहीं होते हैं। यह प्रभाव दान पुण्यादि सत्कर्मों का होता है।

तीसरा आरा- सुखम-दुःखम

दूसरे आरे की समाप्ति पर दो कोडा-कोडी सागरोपम का तीसरा आरा प्रारम्भ होता है एवं पूर्वापेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की उत्तमता में न्यूनता आ जाती हैं। मनुष्यों का देहमान एक कोष, आयुष एक पल्योपम का रह जाता है। उतरते आरे में 500 धनुष का देहमान एक क्रोड़ पूर्व का आयुष रह जाता है। वज्र ऋषभ-नाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान होता है। शरीर में 64 पसलियां उतरते आरे 32 पसलियां रह जाती हैं। एक दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद गुड़ जैसा, उतरते आरे कुछ न्यून। कल्प वृक्षों से जीवन निर्वाह करते हैं। मृत्यु के छः महीने अवशेष रहने पर परभव का आयुष बांधते हैं एवं युगलिनी एक पुत्र व पुत्री का प्रसव करती हैं। 79 दिन लालन-पालन करते हैं, फिर वे दम्पत्ति वन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। एक को छींक दूसरे की उबासी आते ही मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव इनके मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। इसमें वैर, ईर्ष्या, रोग, शोक, जरा कुरूपता नहीं होती। परिपूर्ण अंगोपांग पाकर सुख यापन करते हैं। पूर्व भव के सुकृत का यह शुभ फल है। उक्त तीनों आरे के स्थलचर और खेचर तिर्यंच भी युगलिक होते हैं। इन तीनों आरों में युगलियों का केवल युगल धर्म रहता है।

तीसरे आरे के तीन विभागों में से दो विभागों में उक्त रचना रहती है। इस आरे के

छयासठ लाख करोड़, छयासठ हजार करोड़, छयासठ करोड़, छयासठ लाख, छयासठ हजार, छयासठ सौ, छयासठ (66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66) सागरोपम बीत जाने पर काल स्वभाव से कल्पवृक्षों से पूरी वस्तुएं प्राप्त नहीं होती। इसलिए युगलिक पुरुषों में परस्पर झगड़ा होने लगता है। इस विवाद को मिटाने के लिए तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए 15 कुलकरों की उत्पत्ति होती हैं। ये कुलकर अपने-अपने समय के प्रभावशाली बुद्धिमान पुरुष होते हैं। ये तत्कालीन समाज के व्यवस्थापक और मर्यादा पुरुष होते हैं।

प्रारंभ के पाँच कुलकरों के समय तक 'हकार' की दण्ड नीति प्रचलित होती हैं। अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार का अशोभनीय कार्य करता है, तो उसे कुलकर 'हा' ऐसा शब्द कहते हैं। इसका अर्थ होता है कि 'हा' यह तुमने क्या किया वे उसके कार्य पर खेद प्रकट करते हैं। अपराधी के लिए यही दण्ड पर्याप्त होता है। वह स्वयं को लज्जित अनुभव करता है।

इससे आगे पांच कुलकरो तक 'मकार' की दण्ड नीति चलती हैं अर्थात् अपराधी को 'मा' शब्द कह दिया जाता है। जिसका अभिप्राय है कि 'ऐसा मत करो' इस प्रकार कह देना ही अपराध का दण्ड हो जाता है। इससे आगे के पांच कुलकरों के समय में दण्ड नीति में कुछ कठोरता आ जाती है। उस समय अपराधी को 'धिक' इस कार्य के लिए तुम्हें धिक्कार है शब्द कहकर दण्डित किया जाता है। इन दण्डों से लज्जित होकर उस समय के लोग अपराध से विरक्त हो जाते हैं।

यद्यपि कल्पवृक्षों की फलदायिनी शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है, तदपि इस समय तक कल्पवृक्षों से ही निर्वाह होता रहता है। लोगों को अपने निर्वाह के लिए असि, मसि, कृषि सम्बन्धी आजीविका की आवश्यकता नहीं पड़ती। अत: पहले से लगाकर तीसरे आरे के इस समय तक यह भूमि 'अकर्मभूमि कहलाती है। यहाँ मनुष्य की उत्पत्ति जोड़े से ही होती है, जोड़े से ही रहते हैं तथा इनकी स्थिति करोड पूर्व से अधिक होती है, इसलिए 'युगलिया' कहलाते हैं।

तीसरा आरा समाप्त होने में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष और साढ़े आठ महिने शेष रह जाते हैं, तब अयोध्या नगरी में पंद्रहवें कुलकर से चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रथम तीर्थंकर

का जन्म होता है। काल के प्रभाव से जब कल्पवृक्षों से कुछ भी प्राप्त नहीं होता, तब मनुष्य क्षुधा से व्याकुल होते हैं। मनुष्यों की यह दशा देखकर और दयाभाव लाकर तीर्थंकर भगवान उनके प्राणों की रक्षा के लिए वहाँ स्वभावतः उगे हुए चौवीस प्रकार के धान्य और मेवा आदि खाने को बताते हैं। कच्चा धान्य खाने से उनका पेट दुःखता है। ऐसा जानकर अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करके उसमें धान्य पकाने को कहते हैं। भोले लोग अग्नि प्रज्वलित करके उसमें धान्य डाल देते हैं। अग्नि उसे भस्म कर देती है, उन्हें निराशा होती है और वे तीर्थंकर के पास जाते हैं। तब कुम्भकार की स्थापना करके वर्तन बनाना सिखाते हैं। चार कुल, 18 श्रेणियां, (जातियां), 18 प्रश्रेणियां स्थापित करते हैं। पुरुषों की 72 कलाएं, स्त्रियों की 64 कलाएं, 18 लिपियां, 14 विधाएं सिखलाते हैं।

जीताचार के अनुसार स्वर्ग से इंद्र आकर तीर्थंकर का राज्याभिषेक करते हैं। लग्नोत्सव पाणिग्रहण करवाते हैं। ज्यों-ज्यों कुटुम्ब की वृद्धि होती है। त्यों-त्यों ग्राम, नगर आदि वसाये जाते हैं। इस प्रकार भरत क्षेत्र में आवादी वढ़ जाती है। युगलिक धर्म मिटाकर असि, मसि कृषि कलाएं विद्याएं आदि तीर्थंकर सिखाते हैं। इस आरे में 'ऋषभ प्रभु' प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। वीस लाख पूर्व तक वे कुमार अवस्था में रहे। 63 लाख पूर्व तक शासन किया। तदन्तर अपने पुत्र भरत को राज्यभार सौंपकर चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा धारण की। संयम लेने के एक हजार वर्ष के वाद उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल ज्ञानोत्पति के वाद तीर्थ की स्थापना करते हैं। इस प्रकार प्रथम तीर्थंकर भगवान जगत् के लौकिक और लोकोत्तर कल्याण का मार्ग वताकर, 1. लाख पूर्व तक संयम पालकर अष्टापद पर्वत पर पद्मासन से स्थित होकर, दस हजार साधुओं के परिवार से निर्वाण को प्राप्त हुए।

प्रथम तीर्थंकर के समय राजकुल में प्रथम चक्रवर्ती का भी जन्म होता है। तीर्थंकर के समान चक्रवर्ती की माता भी 14 स्वप्न धूमिल देखती है। भरत चक्रवर्ती का देहमान 500 धनुष का और आयुष 84 लाख पूर्व का होता है। वे चालीस लाख अष्टापदों के वल के धारक होते हैं। और फिर भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर एक छत्र शासन करते हैं।

चौथा आरा - दुःखम सुखम

तीसरे आरे की समाप्ति पर दुःखम-सुखम नामक चौथा आरा प्रारंभ होता है। इसमें

दुःख की प्रचूरता सुख की न्यूनता है। बयालिस हजार वर्ष कम एक क्रोड़ा-क्रोड़ी सागरोपम तक यह आरा चलता है वर्णादि शुभ पुद्‌गलों की अनन्त गुणी हानि होती है। देहमान घटते-घटते 500 धनुष का आयु क्रोड़ पूर्व का रह जाता है। उतरते आरे सात हाथ का देहमान दो सौ वर्ष में कुछ कम का आयु रह जाता है। मनुष्यों के शरीर में 32 पसलियाँ, उतरते आरे 16 पसलियाँ रह जाती हैं। इस आरे में संहनन 6 संस्थान 6 पाँचों गतियों में जाने वाले मनुष्य होते हैं। 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रति वासुदेव इसी आरे में होते हैं। हड्डियों की रचना को संहनन कहते हैं। शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं।

वासुदेव- वासुदेव पूर्व भव में तप संयम का पालन करते हुए निदान करते हैं और आयु पूर्ण होने पर स्वर्ग या नरक का एक भव करके उत्तम कुल में अवतरित होते हैं। उनकी माता को सात उत्तम स्वप्न आते हैं। युवावस्था को प्राप्त कर राज्य सिंहासन पर बैठते हैं। वासुदेव पद की प्राप्ति के समय सात रत्न उत्पन्न होते हैं। (1) सुदर्शन चक्र (2) अमोघ खड्ग (3) कौमुदी गदा (4) पुष्पमाला (5) अमोघ धनुष बाण शक्ति (6) कौस्तुभ मणि (7) महारथ बीस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। अमोध प्रति वासुदेव को मारकर उनके राज्य के अधिकारी बनते हैं। वासुदेव का तीन खण्ड पर एक छत्र राज्य होता है। बलदेव वासुदेव के बड़े भाई होते हैं। बलदेव की माता 4 उत्तम स्वप्न देखती है। बलदेव वासुदेव के पिता एक ही होते हैं। किन्तु माताएं अलग-अलग होती हैं। दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रेम होने से साथ-साथ रहते हैं। दस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव संयम धारण करते हैं और आयु का अंत होने पर स्वर्ग या मोक्ष में जाते हैं।

चौथे आरे के 75 वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रहने पर अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर प्राणत देवलोक से च्यवकर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में क्षत्रिय कुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहां देवानंदा की कुक्षी में उत्पन्न हुए। 83 वीं रात्रि को शकेन्द्र की आज्ञा से हरिणगमेषी देव सिद्धार्थ राजा के यहां त्रिशला रानी की कुक्षि में महावीर के जीव का प्रक्षेप करता है। चैत्र शुक्ल तेरस को भगवान का जन्म होता है। यौवनावस्था आने पर यशोदा के साथ पाणिग्रहण, प्रियदर्शना पुत्री का जन्म और क्रमशः 30 वर्ष की आयु में प्रवज्ज्ा अंगीकार की। 12 वर्ष 6 माह 15 दिन तक कठिन तप ध्यान करके वैशाख शुक्ल दशमी को सुव्रत

नामक दिन, विजय मुहुर्त में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, शुभ चन्द्रमा के मुहूर्त में वियंता नामक पिछले प्रहर में, जृंभिका नगर के बाहर ऋजुवालिका नदी के उत्तर दिशा तट पर शालवृक्ष के समीप गोदूह आसन में केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त किया। केवली पर्याय में 29 वर्ष साढ़े पाँच मास विचरते रहे। चौथे आरे के 3 वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान कार्तिक अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में निर्वाण पधारे। भगवान के पाँच कल्याणक उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में हुए। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद 64 वर्ष तक केवल ज्ञान रहा। गौतम स्वामी 12 वर्ष, सुधर्मास्वामी 8 वर्ष, जम्बुस्वामी 44 वर्ष केवली पर्याय में रहे।

जम्बुस्वामी के निर्वाण के बाद 10 बोलों का विच्छेद हो गया। (1) केवल ज्ञान (2) मनः पर्याय ज्ञान (3) परमावधि ज्ञान (4) परिहार विशुद्धि चारित्र (5) सूक्ष्म संपराय चारित्र (6) यथाख्यात चारित्र (7) पुलाक लब्धि (8) आहारक शरीर (9)क्षपक - उपशम श्रेणी (मतान्तर से क्षपक सम्यक्त्व) (10) जिन कल्पी।

पाँचवाँ आरा - दुःखम

इक्कीस हजार वर्ष का यह दुःखम नामक पाँचवां आरा प्रारंभ होता है । इस आरे में दुःख की विपुलता होती है। चौथे आरे की अपेक्षा वर्ण- गंध, रस स्पर्श के पुद्गलों में अनन्त गुणी हीनता आ जाती है। आयु घटते-घटते सौ वर्ष झाझेरा, देहमान सात हाथ, 16 पसलियां और उतरते 20 वर्ष की आयु, दो हाथ का शरीर आठ पसलियां रह जाती हैं। इस आरे में 6 संहनन, 6 संस्थान होते हैं। इस आरे में मोक्ष नहीं होता। चौथे आरे के जन्में मनुष्य पाँचवें आरे में मोक्ष जा सकते हैं।

पाँचवें आरे के लक्षण के 32 बोल

(1) नगर गांव सरीखे (2) ग्राम श्मशान जैसे (3) सुकुलोत्पन्न दास दासी बनते हैं। (4) यम जैसे क्रूर दण्ड देने वाले राजा होते हैं (5) प्रधान लालची होते हैं (6) कुलीन स्त्रियाँ दुराचारी हो जाती हैं (7) कुलीन स्त्री वैश्या के समान कर्म करने वाली होती हैं (8) पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानने वाला होता है (9) शिष्य गुरु की निंदा करने वाले होते हैं। (10) दुर्जन लोग सुख में रहेंगे (11) सज्जन लोग दुःखी रहेंगे। (12) दुर्भिक्ष अधिक पड़ेगा। (13) सर्प, बिच्छु डंस, मच्छर आदि क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति

अधिक मात्रा में होगी। (14) ब्राह्मण लोभी होंगे। (15) हिंसा को धर्म बताने वाले अधिक होंगे। (16) एक मत के अनेक मतान्तर होंगे। (17) मिथ्यात्व की वृद्धि होगी (18) पाखण्डियों की पूजा होगी (19) देव दर्शन दुर्लभ होंगे। (20) वैताढ्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव मंद पड़ेगा। (21) दुग्ध आदि सरस वस्तुओं की स्निग्धता कम होगी (22) पशु अल्पायु होंगे (23) चातुर्मास योग्य क्षेत्र कम रह जाएंगे (24) साधु की 12 श्रावक की 11 प्रतिमा पालन करने वाला कोई नहीं रहेगा (25) गुरु शिष्य को नहीं पढ़ायेगें। (26) शिष्य अविनीत होंगे (28) आचार्य अलग-अलग संप्रदाय स्थापित कर आत्म स्थायी (अपनी जमाने वाले) और दूसरों की उखाड़ने वाले होंगे। (29) उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले, लोगों को भ्रम में डाल कर फंसाने वाले नाम मात्र के धर्मात्मा ज्यादा होंगे (30) धर्मात्मा, सुशील, सरल स्वभावी लोगों की कमी होगी। (31) मलेच्छ राजा अधिक होंगे। (32) लोगों की धर्म पर प्रीति कम होगी।

इस उतरते आरे में सोना, चाँदी आदि धन का विच्छेद हो जायेगा। लोहे की धातु रहेगी। चमड़े की मोहरें चलेंगी, जिनके पास ये रहेगी वे श्रीमंत माने जाएंगे। इस समय में उपवास मासखमण के समान लगेगा। इस आरे में अधिकांश ज्ञान का उच्छेद हो जायेगा। केवल दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन रहेंगे। किन्हीं का मन्तव्य है कि 1.दशवैकालिक, 2. उत्तराध्ययन 3. आचारांग और 4. आवश्यक ये चार सूत्र रहेंगे।

इनमें चार जीव एकाभवत्तारी होंगे - (1) दुपसह नामक आचार्य (2) फाल्गुनी नामक साध्वी (3) जिनदास श्रावक (4) नागश्री श्राविका।

पंचम आरे के अंतिम दिन अर्थात् आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होगा तब देवेन्द्र- शक्रेन्द्र आकाशवाणी करेंगे। हे भरत क्षेत्रवासियों ! पाँचवाँ आरा आज समाप्त हो रहा है। कल छट्टा आरा लगेगा। सावधान हो जाओ। जो धर्म आराधना करनी हो कर लो। यह सुनकर पूर्वोक्त चारों जीव सर्व जीवों से क्षमा याचना कर निःशल्य होकर संथारा ग्रहण करेंगे। चारों जीव सौधर्म देवलोक में पैदा होंगे। उसके अनन्तर संवर्त्तक - महासंवर्त्तक आयु चलेगी। जिससे पर्वत, गढ़, कोट, कुएँ, बावड़ी, महल आदि नष्ट हो जाएंगे। केवल वैताढ्य पर्वत, गंगा, सिन्धु नदी ऋषभकूट और लवण समुद्र की खाड़ी ये पांच स्थान बचे रहेंगे। शेष सब नष्ट हो जाएंगे। पंचम आरे के अन्तिम दिन के तीसरे भाग में जैन धर्म, अन्य धर्म, राजनीति बादर अग्नि तथा चरित्र धर्म विच्छिन्न हो जाएगा।

छठा आरा - दुःखमा - दुःखम

पाँचवें आरे की समाप्ति के अनन्तर इक्कीस हजार वर्ष का दुःखम- दुःखम नामक छठा आरा आरंभ होता है। इसमें घोरतिघोर दुःख होता है। कठोर, धूलिमलिन, दुस्सह, भयंकर संवर्त्तक, तीव्र गति से चलने वाली वायु चलेगी। दिशाएं प्रतिक्षण धूमिल रहेंगी। कुछ भी दिखाई नहीं देगा। काल की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अहितकर, अपथ्यकर, शीत हिम छोड़ेगें। सूरज अन्यंत असह्य रूप में तपेंगे। भरत क्षेत्र के अधिष्ठाता देव पंचम आरे के विनष्ट होते हुए मनुष्यों में से बीज रूप कुछ मनुष्यों को उठा ले जाता है। वैताढ्य पर्वत के दक्षिण और उत्तर भाग में गंगा सिंधु नदी है उनके आठों किनारे पर नौ-नौ बिल हैं। सब मिलकर 8×9 =72 बिल हैं। प्रत्येक विल में तीन मंजिल हैं। उक्त देव उन मनुष्यों को इन विलों में रख देता है। छठे आरे में पाँचवे आरे की अपेक्षा वर्ण- गंध, रस स्पर्श के पुद्गलों की पर्याय में अनन्तगुणी हानि हो जाती है। क्रमशः घटते -घटते आयुष्य 20 वर्ष का और अवगाहना एक हाथ ही रह जाती है। इस आरे में अशुभ संहनन और अशुभ संस्थान रहता है। मनुष्य के शरीर में आठ पसलियाँ उतरते आरे में चार पसलियां रह जाती है। अपरिमित आहार की इच्छा होती है। रात्रि में शीत और दिन में ताप अत्यन्त प्रवल होता है। इस कारण वे मनुष्य विलों से वाहर नहीं निकल सकते, सिर्फ सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त के लिए वाहर निकलते हैं। उस समय गंगा और सिंधु नदी का पानी सर्प के समान वक्र गति से वहता है। गाड़ी के दोनों चक्र के मध्यभाग जितना चौड़ा और आधा चक्र डुवे जितना गहरा प्रवाह रह जाता है। उस पानी में कच्छ-मच्छ वहुत होते हैं। वे मनुष्य उन्हें पकड़-पकड़ कर नदी की रेत में गाड़कर अपने विलों में भाग जाते हैं। शीत-ताप के योग से जव पक जाते हैं तो दूसरी वार आकर उन्हें निकाल लेते हैं। लूटकर खा जाते हैं। पशु इनकी हड्डियां को चूस-चूस कर निर्वाह करेंगे। मृतक मनुष्यों की खोपड़ी में लोग जल पीयेंगे। उस काल के मनुष्य दीन-हीन, दुर्वल, दुर्गन्धित रुग्ण, अपवित्र, नग्न, आचार-विचार से हीन और माता, भगिनी, पुत्री के साथ संगम करने वाले होते हैं। छः वर्ष की स्त्री संतान का प्रसव करती है। कुतरी और शूकरी के समान वे वहुत परिवार वाले और महाक्लेशमय होते हैं। धर्म पुण्य से हीन दुःख ही दुःख में अपनी सम्पूर्ण आयु पूर्ण कर नरक या तिर्यंच गति में चले जाते हैं जो मनुष्य दानपुण्य से रहित, णमोकार मंत्र के स्मरण से रहित तथा प्रत्याख्यान रहित होंगे। वे ही इस आरे में उत्पन्न होंगे।

उत्सर्पिणी काल

उपर्युक्त अवसर्पिणी काल के छह आरे बीत जाने के बाद उत्सर्पिणी काल का आरम्भ होता है। इसमें भी छह आरे होते हैं। अन्तर यह है कि वे विपरीत क्रम से होते हैं। अर्थात् उत्सर्पिणी काल दुःषम-दुःषम से प्रारम्भ होकर सुषम-सुषम पर समाप्त होता है। उत्सर्पिणी काल के छः आरों का वर्णन है-

1. दुःषम-दुःषम - उत्सर्पिणी काल का यह दुःषम-दुःषम नामक पहला आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन से इसका आरम्भ होता है। इसमें सब रचनाएँ और स्थिति अवसर्पिणी काल के छठे आरे के समान जाननी चाहिये। विशेषता यह है कि इस काल में आयु और अवगाहना आदि क्रमशः बढ़ती जाती है।

2. दुःषम- उत्सर्पिणी काल का द्वितीय आरा दुःषम है। यह भी इक्कीस हजार वर्ष का है। यह भी श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से आरम्भ होता है। इस आरे के आरम्भ होते ही पाँच प्रकार की वृष्टि सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में होती है।

प्रथम आरे के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि में अनन्तगुण वृद्धि होकर दुःषम नामक दूसरा आरा लगेगा। उस समय पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ भरत क्षेत्र प्रमाण आयाम विष्कम्भ वाला होकर आकाश में प्रकट होगा। यह घनघोर गर्जना करेगा।

गर्जना के पश्चात बिजलियाँ कड़केंगी और युग, मूसल, मुष्टि प्रमाण धाराओं से सर्वत्र एक रूप में सात दिन अनवरत बरसेगा। इस मेघ के बरसने से पृथ्वी का अंगार के समान, तप्त चिनगारी के समान, तप्त राख के समान, तप्त कवेलू के समान भू-भाग शीतल बन जाएगा। इसके पश्चात भरत क्षेत्र प्रमाण क्षीर मेघ नामक महामेघ प्रकट होगा, गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और वह मेघ युग-मूसल मुष्टि प्रमाण धाराओं से सात रात-दिन पर्यन्त अनवरत सर्वत्र एकरूप में बरसेगा, जिसके फलस्वरूप भरत क्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पैदा होगा। इसके पश्चात घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और सात दिन - रात तक युग-मूसल- मुष्टि प्रमाण धाराओं में सर्वत्र एक रूप में सात रात-दिन तक बरसेगा। इस प्रकार वह भरत क्षेत्र की भूमि में स्निग्धता उत्पन्न करेगा। फिर सात दिन पर्यन्त अमृत मेघ प्रादुर्भूत होगा। जिसके कारण भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, पर्वग, हरित, औषधि,

प्रवल आदि वनस्पतियाँ उत्पन्न होगी। अमृत मेघ के बाद रसमेघ प्रकट होगा।

पाँच प्रकार के तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुरस को उत्पन्न करेगा। जिससे भरतक्षेत्र विविध प्रकार की वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य बन जावेगा। तब तत्कालीन बिलवासी मनुष्य बिलों से निकलकर इस मनोरम दृश्य को देखेंगे तथा उन भव्य वनस्पतियों का उपभोग करेंगे- इससे वे हृष्ट-पुष्ट होंगे। शनैः शनैः फलाहार की प्रधानता से उनकी बुद्धि में सात्विकता की अभिवृद्धि होगी, जिससे वे मांसाहार और फलाहार के तुलनात्मक विचार करने में सक्षम होंगे। फलाहार से आयु बल- बुद्धि आदि की वृद्धि का अनुभव करते हुए उसे मुख्यता देंगे एवं मांसाहार को घृणित क्रूरता का परिणाम समझने लगेंगे। फलतः विकासोन्मुख बुद्धि वाले वे पारिवारिक सामाजिक रचना के रूप में कुछ मर्यादापूर्वक इस प्रकार एक-दूसरे को कहेंगे कि 'हे देवानुप्रियों ! भरत क्षेत्र विविध वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य हो गया है, अतएव आज से हममें से कोई भी मांसाहार नहीं करेगा। जो कोई मांसाहार करेगा उसकी छाया से भी हम दूर रहेंगे। इस प्रकार वे लोग मर्यादा स्थापित करेंगे। मर्यादा के अनुसार आचरण करते हुए वे भरत क्षेत्र में सुखपूर्वक विचरेंगे।

'इस आरे में भरत क्षेत्र का भूमि भाग बहु रसमय एवं रमणीय हो जावेगा। इस काल में छह संस्थान, छह संहनन, कई हाथ की अवगाहना, जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सौ वर्ष से अधिक आयु भोग कर कोई जीव नरकगामी यावत कोई जीव स्वर्गगामी होंगे। किन्तु सिद्धि नहीं प्राप्त करेगा।' इस रीति से वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्त गुणी वृद्धि होती है। अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे के समान सब रचना और व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

3. दुःषम-सुषम- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे का नाम दुःषम सुषम है। यह बयालीस हजार वर्ष कम एक क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का है। इसकी सब रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान है। इसके तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने के बाद प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। पहले कहे अनुसार इस आरे में 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव आदि होते हैं। पुद्गलों के वर्णादि शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान होगी।

4. सुषम-दुःषम- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे की समाप्ति पर दो क्रोड़ा क्रोड़ी

सागरोपम का चौथा आरा सुषम-दुःषम नामक प्रारम्भ होता है। इसके 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और साढे आठ माह में चौबीसवें तीर्थंकर मोक्ष चले जाते हैं। बारहवें चक्रवर्ती की आयु पूर्ण हो जाती है। करोड़ पूर्व का समय व्यतीत होने पर कल्पवृक्षों की उत्पत्ति होने लगती है। उनसे मनुष्यों और तिर्यंचों की इच्छाएँ पूर्ण हो जाती है। असि, मसि, कृषि आदि धंधे बंद हो जाते हैं। युगल उत्पन्न होने लगते हैं। बादर अग्निकाय का विच्छेद हो जाता है, इस प्रकार इस आरे में सब मनुष्य अकर्मभूमिक बन जाते हैं। वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्तगुनी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के समान होगी।

5. सुषम- उक्त चौथे आरे के बाद तीन क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का पाँचवाँ आरा लगता है। इसका नाम सुषम है, इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के दूसरे आरे के समान समझना चाहिए। वर्णादि की शुभ पर्यायों में अन्तगुनी क्रमशः वृद्धि होती जाती है।

6. सुषम-सुषम- सुषम आरे के बाद चार क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का छठा आरा लगता है। इसका नाम सुषम-सुषम है। इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे के समान समझना चाहिये। वर्णादि की शुभ पर्यायों में क्रमशः अनन्तगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार दस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का अवसर्पिणी काल और दस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का उत्सर्पिणी काल होता है। दोनों मिलकर बीस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का एक काल-चक्र होता है। भरत और ऐरावत क्षेत्र में यह काल चक्र अनादि काल से घूम रहा है और अनन्तकाल तक घूमता रहेगा।

पल्योपमादि का स्वरूप

पल्योपमादि का स्वरूप : पूर्वोक्त स्थिति और आरक प्रकरण में पल्योपम और सागरोपम का कथन आया है। अतएव उनके स्वरूप को समझना जरूरी है। शास्त्रकार ने पल्योपम सागरोपम को उपमा द्वारा समझाया है, अतएव वे उपमेय कहे जाते हैं।

पल्योपम : कालका सबसे छोटा निरंश अंश परमाणु कहा जाता है। वह अतीन्द्रिय होता है।

1. इस प्रकार के अनन्त सूक्ष्म परमाणु से एक व्यवहार परमाणु बनता है।
2. अनन्त व्यवहार परमाणुओं से एक उष्ण स्निग्ध परमाणु होता है।

3. अनन्त उष्ण- स्निग्ध परमाणुओं से एक शीत स्निग्ध परमाणु होता है।

4. आठ शीत स्निग्ध परमाणु से एक ऊर्ध्व रेणु होता है।

5. आठ ऊर्ध्व रेणु से एक त्रस रेणु होता है।

6. आठ त्रसरेणु से एक रथ रेणु होता है।

7. आठ रथरेणु से देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

8. आठ देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के वालाग्रों से हरी वास रम्यक वास के मनुष्यों का एक बालाग्र।

9. इनके आठ वालाग्र से हेमवय हिरण्यवय मनुष्यों का एक बालाग्र।

10. इनके आठ बालाग्र से पूर्व- विदेह पश्चिम विदेह मनुष्यों का एक वालाग्र।

11. इनके आठ वालाग्र से भरत ऐरावत के मनुष्य का एक वालाग्र।

12. इनके आठ वालाग्र से एक लीख होती है।

13. आठ लीख की एक यूका (जू)।

14. आठ यूका का एक अर्धयव।

15. आठ अर्धयव का एक उत्सेध अंगुल।

16. छह उत्सेध अंगुल का एक पैर का पना (चौड़ाई)।

17. दो पैर के पने का एक वेंत।

18. दो वेंत का एक हाथ।

19. दो हाथ की एक कुक्षि।

20. दो कुक्षि का एक धनुष।

21. दो हजार धनुष का एक कोस (गाऊ)

22. चार कोस का एक योजन।

कल्पना कीजिये कि एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन [illegible] कुआं हो, उसमें देवकुरु, उत्तरकुरु मनुष्यों के बालों के असंख्य [illegible]

ऊपर तक ठूँस-ठूँस कर इस प्रकार भरे जायें कि उसके ऊपर से चक्रवर्ती की सेना निकल जाय तो भी वह नमे नहीं। नदी का प्रवाह उस पर से गुजर जाय परन्तु एक बूंद पानी अंदर न भर सके। अग्नि का प्रवेश भी न हो। उस कुएँ में से सौ-सौ वर्ष बाद एक-एक बाल खण्ड निकालें। इस प्रकार करने से जितने समय में वह कूप खाली हो जाय, उतने समय को एक पल्योपम कहते हैं। ऐसे दस क्रोड़ा क्रोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। बीस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का एक कालचक्र होता है। अनन्त कालचक्र बीतने पर एक पुद्गल परावर्तन होता है।



अवसर्पिणी काल के छः आरे का चार्ट

		पहला आरा	दूसरा आरा	तीसरा आरा	चौथा आरा	पाँचवा आरा	छठा आरा
1.	नाम	सुषम-सुषम	सुषम	सुषम-दुषम	दुषम-सुषम	दुषम	दुषम-दुषम
2.	अनुभव	सुख-सुख	सुख	सुख-दुख	दुख-सुख	दुःख	दुःख-दुःख
3.	काल	भोगकाल (युगलकाल)	भोगकाल	भोगकाल/कर्मकाल व धर्मकाल	कर्मकाल एवं धर्मकाल	कर्मकाल, धर्मकाल व पापकाल	महापाप काल
4.	स्थिति	4 क्रोडा क्रोडी सागरोपम	3 क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम	2 क्रोडा क्रोड़ी सागरोपम	42 हजार वर्ष कम 1 क्रोडा क्रोड़ी सागरोपम	21 हजार वर्ष	21 हजार वर्ष
5.	पृथ्वी का स्वाद	मिश्री के समान	शक्कर के समान	गुड़ के समान	क्रमशःहीन	क्रमशःहीन	भस्म रूप
6	मनुष्य की अवगाहना (ऊँचाई)	लगते 3 गाऊ उतरते 2 गाऊ	लगते 2 गाऊ उतरते 1 गाऊ	लगते 1 गाऊ उतरते 500 धनुष	लगते 500 धनुष उतरते 7 हाथ	लगते 7 हाथ उतरते 2 हाथ	लगते 2 हाथ उतरते 1 हाथ
7.	मनुष्य की आयुष्य	लगते 3 पल्योपम उतरते 2 पल्योपम	लगते 2 पल्योपम उतरते 1 पल्योपम	लगते 1 पल्योपम उतरते क्रोड पूर्व	लगते क्रोड पूर्व उतरते 100 वर्ष से कुछ अधिक	लगते 100 वर्ष झाझेरी उतरते 20 वर्ष	लगते 20 वर्ष उतरते 16 वर्ष
8	मनुष्य का संहनन	वज्र ऋषभनाराच संहनन	वज्र ऋषभनाराच संहनन	1/6 संहनन	6 संहनन	6 संहनन	सेवार्त संहनन

अवसर्पिणी काल के छः आरे का चार्ट

9.	मनुष्य का संस्थान	समचतुरस्त्र संस्थान	समचतुरस्त्र संस्थान	1/6 संस्थान	6 संस्थान	6 संस्थान	हुण्डक संस्थान (कुरूप)
10.	मनुष्य के शरीर की पसलियां	256	128	64	32	16	8 (बेड़ोल शरीर वाले)
11.	मनुष्य का निवास	वनवास (वृक्षों पर)	वनवास	वनवास/नगरवास	नगरवास	नगरवास	बिलवास
12.	दण्डनीति	नहीं	नहीं	नहीं/हाकार, मक्कार, धिक्कार	कठोर	कठोर	नहीं
13.	आहार की इच्छा	तीन दिन के अंतर में	2 दिन के अंतर में	1 दिन के अंतर में	प्रायः दिन में एक बार	दिन में अनेक बार	अनियमित इच्छा
14.	आहार	पृथ्वी, पुष्प, फलों का	पृथ्वी, पुष्प, फलों का	पृथ्वी, पुष्प फल अन्न आदि का	अन्न, फल आदि का	अन्न, फल, मांसाहार आदि का	प्रायः मांसाहार
15.	गति	देवगति	देवगति	देवगति/चारों गति व मोक्ष	चारों गति व मोक्ष	चारों गति व मोक्ष	प्रायः नरक/तिर्यंच गति
16.	संतति का पालन	49 दिन	64 दिन	79 दिन	अनियमित काल	अनियमित काल	अनियमित काल

आशातना

आशातना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है -

आ - सामस्त्येन शात्यन्ते अपध्वंस्यन्ते ज्ञानादिगुणाः याभि ताः आशातनाः।

अर्थ - जिनका सेवन करने से ज्ञानादि गुण नष्ट हो जायें उन्हें आशातना कहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शनादि गुणों का घात करने वाली अविनय की क्रियाओं को आशातना कहते हैं।

"एवं धम्मस्स विणओ मूलं" कह कर शास्त्रकारों ने विनय का महत्व बतलाते हुए उसकी अनिवार्य आवश्यकता भी बतला दी है। धर्म का प्रासाद (महल) विनय की नींव पर खड़ा होता है इसीलिए विनय रहित क्रियाओं को आशातना (सम्यग्दर्शनादि गुणों का नाश करने वाली) कहना ठीक ही है। वे आशातनाएँ तैंतीस प्रकार की हैं। शैक्ष (नव दीक्षित) और छोटी दीक्षा वाले साधु-साध्वी को रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े साधु साध्वियों) के साथ रहते हुए रत्नाधिक के प्रति विनय और बहुमान रख कर इन आशातनाओं का परिहार करना चाहिए जिससे विनय और धर्म की यथार्थ आराधना होती है और मनुष्य देवों के उत्तम ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होता है और मुमुक्ष अपने मुक्ति प्राप्ति रूप ध्येय के अधिकाधिक समीप पहुँचता है। इसका फल बतलाते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के 31 वें अध्ययन में बतलाया है -

से ण अच्छइ मंडले

अर्थात् - वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है अपितु शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

'आवश्यक' सूत्र में दूसरे प्रकार से भी तैंतीस आशातनाएँ बतलाई हैं यथा -

'अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए जाव सज्झाइए ण सज्झाइयं' इन आशातनाओं का स्वरूप हरिभद्रीय आवश्यक सूत्र अथवा श्रमण सूत्र से जानना चाहिए।

"सम्यग् दर्शन आदि की घात करने वाली ये निम्न तैंतीस आशातनाएँ कही गई है" -

(1) शैक्ष (शिष्य तथा दीक्षा पर्याय में छोटा) रत्नाधिक (यानि ज्ञान दर्शन चारित्र

रूप रत्नों में बड़े एवं दीक्षा पर्याय में बड़े साधु) के आविनय पूर्वक आगे-आगे चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (2) शिष्य रत्नाधिक के बराबर चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (3) शिष्य रत्नाधिक के बहुत पास चले तो। (4) शिष्य रत्नाधिक के आगे खड़ा रहे। (5) बराबरी में खड़ा रहे। (6) बहुत नजदीक चिपकता हुआ खड़ा रहे तो शिष्य को आशातना लगती है। (7) शिष्य रत्नाधिक के आगे बैठे। (8) बराबर बैठे। (9) बहुत नजदीक चिपकता हुआ बैठे तो शिष्य को आशातना लगती है। (10) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विचार भूमि यानी जंगल गया हो और कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गए हों, ऐसी अवस्था में यदि शिष्य रत्नाधिक से पहले आचमन यानि शौच करे। रत्नाधिक पीछे शौच करे तो (11) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विचार भूमि यानि जंगल गया हो अथवा स्वाध्याय करने के स्थान पर गया हो वहाँ से वापिस लौट कर यदि शिष्य पहले ईर्यापथ सम्बन्धी आलोचना करे तो (12) कोई पुरुष ऐसा है जिसके साथ रत्नाधिक को पहले बातचीत करनी चाहिए। उसके साथ यदि शिष्य पहले बातचीत करे और रत्नाधिक पीछे बातचीत करे तो (13) रात्रि के समय अथवा विकाल यानि सन्ध्या के समय रत्नाधिक शिष्य को बुलाए कि हे आर्यों ! कौन सोता है और कौन जागता है ? ऐसा पूछने पर शिष्य जागते हुए भी रत्नाधिक के वचनों को न सुने यानि कुछ भी उत्तर न दे तो। (14) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उसकी आलोचना यदि पहले अन्य शिष्यों के पास करे और पीछे रत्नाधिक के पास करे तो (15) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उस आहार पानी को यदि पहले छोटे साधुओं को दिखलावे और रत्नाधिक को पीछे दिखलावे तो। (16) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर पहले शिष्य को एवं छोटे साधु को निमन्त्रित करे और रत्नाधिक को पीछे निमन्त्रित करे तो (17) शिष्य रत्नाधिक के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक को बिना पूछे ही जिसको चाहता है उसको वह आहार प्रचुर मात्रा में दे देता है तो। (18) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक के साथ आहार करते हुए यदि प्रचुर मात्रा में खट्टे रस वाले शाक आदि को, रसादि गुणों से प्रधान सरस, मनोज्ञ, मनोहर-मन को प्रिय लगने वाला, घृतादि से स्निग्ध, रूक्ष-स्वादिष्ट लगने वाला पापड़ आदि को जल्दी-जल्दी खाने लगे तो (19) यदि रत्नाधिक शिष्य को बुलावे- आवाज दे, किन्तु शिष्य उनके वचनों को ध्यान पूर्वक न सुने तो। (20) रत्नाधिक के

बुलाने पर शिष्य यदि अपने स्थान पर बैठा हुआ ही उनके वाक्य को सुने किन्तु कार्य करने के भय से उनके पास न जावे तो (21) रत्नाधिक के बुलाने पर यदि शिष्य "क्या कहते हो" ऐसा कहे तो। (22) शिष्य रत्नाधिक को यदि 'तू' कहता है तो (23) शिष्य रत्नाधिक को अत्यन्त कठोर और आवश्यकता से अधिक वाक्यों का प्रयोग करके पुकारे तो (24) शिष्य रत्नाधिक के वचनों से ही रत्नाकर का तिरस्कार करे तो, जैसे कि रत्नाधिक कहे कि 'हे आर्य ! तुम ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते ? तुम आलसी हो।' रत्नाधिक के ऐसा कहने पर यदि शिष्य उन्हीं के शब्दों को दोहराते हुए उन्हें कहे कि - तुम स्वयं ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते ? तुम खुद आलसी हो तो (25) रत्नाधिक जब कथा कह रहे हों तब शिष्य यदि बीच में ही बोल उठे कि 'अमुक बात इस तरह है, अथवा अमुक पदार्थ का स्वरूप इस प्रकार है' तो। (26) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों, उस समय शिष्य यदि कहे कि आपको याद नहीं है, आप भूल रहे हैं, यह बात इस तरह नहीं है तो। (27) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों उस समय यदि शिष्य प्रसन्न चित्त न हो एवं उनके वचन एकाग्रचित्त से न सुने तो। (28) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों उस समय शिष्य कहे 'अब गोचरी का समय हो गया है, कथा समाप्त होनी चाहिए' इत्यादि कह कर सभा को छिन्न-भिन्न करे तो। (29) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहें हों, उस समय यदि शिष्य किसी उपाय से कथा विच्छेद करे तो। (30) जिस सभा में रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों, वह सभा उठी न हो, सभा छिन्न-भिन्न न हुई हो यानि लोग गये न हों, सभा छिन्न न हुई हों यानि लोग बिखरे न हों, सभा बिखरी न हों, उसी सभा में यदि शिष्य रत्नाधिक की लघुता और अपना गौरव बताने के लिए उसी कथा को दो बार-तीन बार विस्तार पूर्वक कहे तो। (31) शिष्य के पैर से यदि रत्नाधिक की शय्या संस्तारक बिछौने का स्पर्श हो जाये और शिष्य हाथ जोड़कर उस अपराध की क्षमा मांगे बिना तथा उस आसान को वापिस ठीक किए बिना चला जाए तो। (32) शिष्य रत्नाधिक के शय्या संस्तारक पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोवे तो। (33) शिष्य यदि रत्नाधिक से ऊँचे आसान पर अथवा बराबर आसन पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोये तो।

ये तैंतीस आशातनाए हैं। शिष्य को इन आशातनाओं का त्याग करना चाहिए अर्थात् उन आशातनाओं से बचना चाहिए।



13. म.सा. रोटी खा रहे हैं।	13. म.सा. आहार कर रहे हैं।
14. म.सा. आपस में वात कर रहे हैं।	14. म.सा. आपस में धर्म चर्चा कर रहे हैं।
15. म.सा. पढ़ रहे हैं।	15. म.सा. स्वाध्याय कर रहे हैं।
16. म.सा. यहाँ वैठो।	16. म.सा. यहाँ विराजिए।
17. म.सा. कुछ वात करोना।	17. म.सा. कुछ फरमाने की कृपा कीजिए।
18. म.सा. पढ़ाओगे ?	18. म.सा. आपकी अनुकूलता हो तो सिखाने की कृपा करावें।
19. आपने हमें पढ़ाया उसके लिए धन्यवाद।	19. म.सा. आपने ज्ञान दान देकर वड़ी कृपा की। ऐसी कृपा दृष्टि सदैव वनी रहे।
20. आप कितने अच्छे हैं।	20. आपकी संयम साधना कितनी श्रेष्ठ है।
21. म.सा. आपका अच्छा साथ मिला।	21. आप संयमी आत्माओं के सुयोग मिलने से हम धन्य हो गए।
22. म,सा. हमारे मकान में रुक जाओ।	22. म.सा. हमें शैय्यात्तर के लाभ की कृपा करावें।
23. म.सा. यह मकान वहुत अच्छा है।	23. म.सा. यह मकान आपके लिए साताकारी है। अनुकूल है।
24. म.सा. आप इस स्थान पर पानी आदि फेंक सकते हैं।	24. म.सा. आप इस स्थान पर पानी आदि परठ सकते हैं।
25. म.सा. इस पाटे की हमारी आज्ञा है।	25. म.सा. इस पाटे की हमारी अनुज्ञा है।
26. गुरुदेव पाट पर बैठे हुए हैं।	26. गुरुदेव पाट पर विराजे हुए हैं।
27. गुरुदेव प्रवचन वोलते हैं।	27. गुरुदेव प्रवचन फरमाते हैं।
28. म.सा. आपश्री ने वहुत अच्छा पढ़ाया समझ में आ गया है।	28. अहो पू. म.सा.। आपने वड़ी कृपा करके हमें ज्ञान दान प्रदान किया।
29. म.सा. कपड़ा समेट रहे हैं।	29. म.सा. कपड़ों का प्रति लेखन पलेवन कर रहे हैं।
30. आज हमारे यहाँ आये। वहुत खुशी हुई।	30. आज हमारे अहोभाग्य हैं, जो आप आप हमारे द्वार पधारे।
31. हमने म. सा. को एक गाँव से दूसरे दूसरे गाँव जाते हुए देखा।	31. हमने म.सा. को विहार करते हुए देखा।
32. आज प्रवचन में अच्छा टाइम पास हुआ।	32. आज प्रवचन में वहुत आनंद आया हमारे भाग्य जगे जो संसार के स्वरूप को समझने का अवसर मिला।

श्री अखिल भारत वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

मुख्य उद्देश्य

- समता समाज की रचना।
- व्यसन मुक्त राष्ट्र का निर्माण।
- जीवदया, स्वधर्मी सेवा, मानव सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन।
- जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और आचार के शाश्वत सिद्धान्तों का लोक भाषा में प्रचार।
- जन कल्याणकारी सहज-सुबोध साहित्य का निर्माण।
- सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि हेतु शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था।
- समाज में धार्मिक चेतना के अभ्युत्थान हेतु आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शैक्षणिक विकास के कार्य करना।
- धार्मिक परीक्षा शिविर व शिक्षा के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना।
- जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को जानने हेतु प्रयासरत शोधार्थियों एवं विद्वानों को यथोचित सहयोग प्रदान करना।
- धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित कर सम्यक् ज्ञान का प्रचार करना।